स्वस्थ चेतना का वाहक

अप्रैल 2026

क्रान्ति

मासिक

सहयोग राशि
30/-₹

इतिहास और इतिहास लेखन

- इतिहास और समकालीन भारत : कथ्य, तथ्य और सत्य
- मध्यकालीन भारत की साझा विरासत : सूफ़ी तहरीक और भक्ति आंदोलन
- क़ुरआन का इतिहास लेखन : मानवजाति के मार्गदर्शन के लिए



WITH BEST COMPLIMENTS FROM

Sermad Traders

Agriculture Input Dealer

B.H. Road, Tarikere, Chikkamagalore District



جس کو اللہ ہدایت دینے
کا فیصلہ کرتا ہے اس کے
سینے کو اسلام کے لیے
کھول دیتا ہے۔ (مشکوٰۃ)



प्रधान संपादक
डॉ. फ़रहत हुसैन
kantieditorial@gmail.com

प्रबंधक
नईम ख़ान
+91 9891160829

सहयोग राशि
एक प्रति 30/- रु॰ एक वर्ष 350/- रु॰
पांच वर्ष 1500/- रु॰ आजीवन रु॰ 5000/
सऊदी अरब और खाड़ी के देशों के लिए 110/- रियाल
यूरोप व अमेरिका के लिए 40/- US डॉलर

ख़रीदार बनने, एजेंसी लेने, प्रचार-प्रसार एवं प्रबंधकीय मामलों के लिए सम्पर्क करें :

कार्यालय :
कान्ति मासिक, डी-314, दावत नगर,
अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव, जामिया नगर,
ओखला, नई दिल्ली-110025

हेल्पलाइन न॰
9818799223

Account Detail
NAME : KANTI
A/C NO : 0990839195
IFS CODE : IDIB000J029
TYPE : CURRENT
BANK : INDIAN BANK
BRANCH : JAMIA MILLIA ISLAMIA
NEW DELHI - 110025
चेक / ड्राफ़्ट 'कान्ति' के नाम से बनवाएं

प्रकाशक मुहम्मद अहमद द्वारा दावत
ट्रस्ट (रजि॰), डी-314 दावत नगर, अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव,
जामिया नगर, नई दिल्ली-110025 से प्रकाशित एवं
Printer : Akhilesh Singh
Press : AARYA PRINTERS
201, Ground Floor, DSIDC Complex
Okhla Industrial Area phase-1,
New Delhi-110020
Editor : Shibli Arsalan

संस्था की लिखित अनुमति के बिना सम्पूर्ण या आंशिक पुनर्प्रकाशन पूर्णतः प्रतिबंधित है।

विचार सौरभ **डॉ. कौसर यज़दानी नदवी**

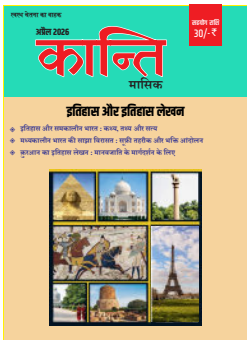
पैग़म्बरे-इस्लाम का आदर्श

पैग़म्बरे-इस्लाम हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰)
पहुंचाने गए थे रब का सन्देश तायफ़ के सरदारों तक
लेकिन सुनकर न दिया उन सरदारों ने
बिगड़ गए नबी पर, बहुत बुरा-भला कहा उनको
इतना ही नहीं, वापसी पर,
आबादी के घटिया और बाज़ारी लोगों को लगा दिया उनके पीछे,
उभार दिया गुंडों को उनके ख़िलाफ़,
फिर क्या था, गुंडों की टोली जमा हो गई नबी के आस-पास,
गालियां देने लगी, तालियां पीटने लगी,
नबी पर पत्थरों की वर्षा करने लगी।
वे निढाल होकर जब बैठते, गुंडे उठा देते हाथ पकड़कर,
फिर वही पत्थरों की वर्षा हुई, वही पीड़ा पहुंचाने का काम,
यहां तक कि लहूलुहान हो गए नबी (सल्ल.)।
ख़ून से जूतियां भर गईं।
किसी तरह शहर के बाहर आप आ सके।
चोट की पीड़ा सह न सके, तो बेदम होकर एक बाग़ में,
अंगूर की एक बेल के तने से टेक लगाकर बैठ गए।
साथ में ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि॰) भी थे।
इस करुण स्थिति को देखकर बोले–
'आप तायफ़ वालों को श्राप दीजिए।'
नबी ने इन्कार कर दिया, फ़रमाया–
'नहीं, श्राप देना सही नहीं है।
आज ये रब के सन्देश को सुनना-समझना नहीं चाहते
कल इनकी नस्लें इसे ज़रूर सुनेंगी-समझेंगी।'
जिबरील आपके पास आए, बोले–
'पहाड़ों का इंचार्ज फ़रिश्ता आपकी सेवा में उपस्थित है।
आप कहें तो, जिन पहाड़ियों के बीच में तायफ़ आबाद है,
इन दोनों को इस तरह मिला दें कि पूरी आबादी पिस जाए।
इनका नाम व निशान ही मिट जाए।'
नबी ने उनकी बात भी न मानी,
नहीं, ऐसा न करो,
ये नहीं, तो इनकी नस्लें तो ईमान ले ही आएंगी
यह है पैग़म्बरे-इस्लाम हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) का आदर्श–
यह कि दुश्मन के लिए भी दुआ करो
उनके लिए भी बुरा न चाहो।

(प्रथम प्रकाशन : जुलाई 1997)

वर्ष 35 अंक 10 अप्रैल 2026





आपकी आशाओं का सुन्दर प्रतिबिम्ब

कान्ति
मासिक

इस अंक में

- पैग़म्बरे-इस्लाम का आदर्श (विचार सौरभ) – डॉ. कौसर यज़दानी नदवी 3
- इतिहास और इतिहास लेखन (संपादकीय) –डॉ. फ़रहत हुसैन 5
- मार्गदर्शन –संपादन प्रभाग 6
- अंतिम पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) अल्लाह की ओर बुलाना –मुशर्रफ़ अली 7
- सबसे बड़ा जोखिम –आयशा सुल्ताना 11
- इतिहास की प्रासंगिक प्रस्तावना –अफ़ज़ल हुसैन 13
- कथ्य, तथ्य और सत्य –सुफ़ियान अहमद 15
- सोशल मीडिया : मिथक और ज़िम्मेदारी –डॉ. मुहम्मद इक़बाल सिद्दीक़ी 19
- मध्यकालीन भारत की साझा विरासत : सूफ़ी तहरीक और भक्ति आंदोलन –ग़ौस सीवानी 23
- इंडो-इस्लामिक स्थापत्य कला का संवृद्ध इतिहास –जुनैद अली 25
- सातवीं सदी : शाश्वत मार्गदर्शन का वैश्विक चरण –एफ.ए. मुजीब 27
- मुस्लिम और मुग़ल शासनकाल का आर्थिक परिदृश्य –अज़का हयात 29
- उत्तराखंड में मुसलमान : भाग–1 –इस्लाम हुसैन 33
- मानव जाति के मार्गदर्शन के लिए –एम. शकील शम्सी 37
- हमने तुझे जाना है फ़क़त तेरी अता से –हफ़ीज़ बनारसी 41
- "बीज" –सुफ़ियान अहमद 43
- आर्थिक मुश्किलों का आदर्श हल –सलमान अहमद 46
- विस्थापित शिक्षिका की मनोकामना –इकराम तलअत अहमद 47

संपादकीय



डॉ. फ़रहत हुसैन

इतिहास और इतिहास लेखन

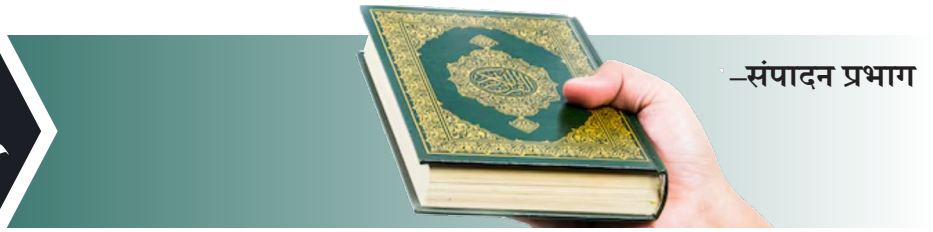
इतिहास सामाजिक विज्ञान का मूल स्रोत है। इतिहासकार का उद्देश्य समसामयिक समाज के अतीत का अवलोकन कर वर्तमान को प्रशिक्षित करते हुए भविष्य के लिए ऐसा मार्गदर्शन प्रस्तुत करना है जिससे आने वाला समय सुखमय हो। गुज़रा हुआ कल अर्थात् अतीत आज की बुनियाद है, जिस पर आने वाला कल टिका हुआ है। यही चीज़ इतिहास लेखन की आवश्यकता तथा उसके महत्व को रेखांकित करती है।

प्राचीन सभ्यताओं में यूनान इतिहास लेखन में अग्रणी माना जाता है। यूनानी इतिहासकार 'हेरोडोटस' को इस विधा का जनक कहा जाता है। रोम, चीन और भारतीय प्राचीन साहित्य भी इतिहास लेखन के अच्छे उदाहरण हैं। इतिहास के क्षेत्र में मुस्लिम विद्वानों का योगदान भी सराहनीय रहा है। मुसलमानों को इसकी प्रेरणा क़ुरआन में उल्लेखित घटनाओं के अध्ययन से मिली। इसके अतिरिक्त पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) की जीवनी, उनके समय के हालात, युद्ध तथा संधियों संबंधी सूचनाओं के संकलन ने भी इतिहास लेखन की ओर मुस्लिम विद्वानों को प्रेरित किया। क़ुरआन में बार-बार पूर्व की क़ौमों और संदेशवाहकों का इतिहास बयान हुआ है और इन ऐतिहासिक वृत्तांतों से सबक़ लेने की नसीहत भी की गई है, इसलिए मुस्लिम बुद्धिजीवियों ने इतिहास लेखन में प्रामाणिकता को प्राथमिकता दी। क़ुरआन में उल्लिखित अतीत की घटनाओं तथा गुज़रे हुए हालात की प्रामाणिक समीक्षा की, पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) के जीवन परिचय को सावधानी से दर्ज किया यहां तक कि जिन लोगों ने पैग़म्बर (सल्ल०) के कथनों को रिकॉर्ड कराया उनके जीवन की भी समालोचनात्मक जांच-पड़ताल की ताकि पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) के कथनों की प्रमाणिकता बनी रहे। इस सावधानी का कारण यह भी है कि क़ुरआन के बाद पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) की सुन्नत या तरीक़ा ही वास्तव में इस्लामी विधान या शरीअत का स्रोत है। इस प्रकार इतिहास लेखन को प्रामाणिकता के साथ बढ़ावा मिला।

ऐतिहासिक घटनाओं की समीक्षा के लिए तीन दृष्टिकोण हैं। पहला यह कि जैसा कुछ है वैसा ही ले लिया जाए, दूसरा यह कि घटनाओं को अपने क़ौमी या नस्ली हित के अनुसार देखें और तीसरा यह कि यह अध्ययन पूर्ण रूप से सैद्धांतिक हो अर्थात् क़ौमी या नस्ली पक्षपात से ऊपर उठकर केवल मानव कल्याण को सामने रखकर विभिन्न ऐतिहासिक विवरणों तथा लोगों की गतिविधियों की निष्पक्ष जांच-परख करके कोई राय प्रस्तुत करें। इस्लाम क्योंकि किसी विशेष क़ौम, जाति, पंथ या नस्ल का नाम नहीं है इसलिए उसे उन संकीर्णताओं में कोई रुचि नहीं जो इंसान को क़ौम, नस्ल या क्षेत्र के आधार पर बांटती हैं। इसलिए इतिहास लेखन में भी मुस्लिम इतिहासकारों ने यही तरीक़ा अपनाया कि वह घटनाओं को उसी रूप में उल्लिखित करें तथा सत्य और असत्य के मानकों के अनुसार व्यक्तियों, क़ौमों तथा समूहों के व्यवहारों की समीक्षा करके बेलाग नतीजे निकालें। जहां कहीं भी ग़लती हो उसको इंगित करें और जहां भी कोई ख़ूबी नज़र आए उसका भी उल्लेख कर दें। इस पक्षपातरहित ऐतिहासिक विवेचन की रोशनी में वर्तमान में उन ग़लतियों से बचा जा सकता है जो अतीत में हुई हैं तथा उन अच्छे कार्यों की ओर बेहतर ढंग से बढ़ा जा सकता है जो पहले से किए जाते रहे हैं।

आज जब राष्ट्र और नस्ल के संकीर्ण हितों को साधने के लिए इतिहास को विकृत करने के प्रयास हो रहे हैं, ऐसे में 'नेशनल हिस्ट्री कॉन्फ्रेंस' जैसे आयोजनों की प्रासंगिकता और बढ़ जाती है। पिछले वर्ष की तरह इस वर्ष भी अप्रैल में दिल्ली में आयोजित होने जा रहा यह आयोजन केवल एक अकादमिक कॉन्फ्रेंस नहीं, बल्कि मौजूदा दौर की एक महत्वपूर्ण बौद्धिक आवश्यकता भी है। ऐसे मंच इतिहासकारों, पत्रकारों, शिक्षकों और जागरूक नागरिकों को एक साथ लाकर इतिहास के प्रति सही दृष्टिकोण विकसित करने में सहायक सिद्ध होते हैं। ■■

क़ुरआन



–संपादन प्रभाग

इतिहास से सबक़

“अगले वक़्त के इन क़िस्सों में अक़्ल और चेतना रखने वालों के लिए शिक्षा है।”

(क़ुरआन, सूरा-12, यूसुफ़ : 111)

व्याख्या : क़ुरआन के इस अध्याय में पैग़म्बर यूसुफ़ (अलैहि०) के जीवन संबंधी हालात विस्तार से उल्लेखित हैं जिसमें उस समय की ऐतिहासिक घटनाओं का भी उल्लेख हुआ है। पैग़म्बर यूसुफ़ (अलैहि०) का जीवन भी बहुत उतार-चढ़ाव का रहा है। इस विस्तृत विवरण के बाद यह बात कही गई कि इस ऐतिहासिक वृत्तांत में अक़्ल रखने वालों के लिए बड़ी शिक्षा है। आशय यह है कि अतीत की इन घटनाओं से इंसानों को सबक़ लेना चाहिए।

“फिर क्या ये ज़मीन में चले-फिरे नहीं हैं कि इनको उन लोगों का अंजाम नज़र आता जो इनसे पहले गुज़र चुके हैं? वे इनसे तादाद में अधिक थे, इनसे बढ़कर शक्तिशाली थे, और ज़मीन में इनसे अधिक शानदार निशान छोड़ गए हैं। जो कुछ कमाई उन्होंने की थी, आख़िर वह उनके किस काम आई?”

(क़ुरआन, सूरा-40 अल-मोमिन : 82)

व्याख्या : अर्थात् गुज़री हुई क़ौमों के पुरातत्व तथा उनकी ऐतिहासिक गाथाएं गवाही देंगी कि सच्चाई और हक़ीक़त से मुंह मोड़ने तथा असत्य पर जमे रहने के कारण उनका क्या अंजाम हुआ। पुरातत्व के संकेतों तथा ऐतिहासिक विवरणों से वर्तमान के लिए शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

इसी बात को क़ुरआन में दूसरे स्थान पर इस प्रकार उल्लेखित किया गया–

“और क्या इन लोगों को (इन ऐतिहासिक घटनाओं में) कोई हिदायत नहीं मिली कि उनसे पहले कितनी क़ौमों को हम हलाक कर चुके हैं, जिनके रहने की जगहों में आज ये चलते-फिरते हैं? इसमें बड़ी निशानियां हैं क्या यह सुनते नहीं हैं?” (क़ुरआन, सूरा-32 अस सजदा : 26)

हदीस

पिछले अनुभव से सबक़ लेना चाहिए

पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने कहा–

“मोमिन (आस्थावान व्यक्ति) को एक छेद से दुबारा डंक नहीं लग सकता।” (हदीस : बुख़ारी-6133)

व्याख्या : यहां एक मिसाल देकर बताया गया है कि व्यक्ति अनजाने में किसी कीड़े आदि के डंक का शिकार हो सकता है परंतु जब उसका अनुभव उसे बता दे कि इस छेद में कोई डंक मारने वाली चीज़ है तो वह सचेत हो जाएगा और फिर इसकी पुनरावृत्ति नहीं होगी। यहां यह बताया जा रहा है कि समझदार आदमी वही है जो पिछले अनुभव से शिक्षा ग्रहण करे। यदि अनजाने में कोई कष्ट या हानि हो जाए तो कोई बात नहीं परंतु जानकारी के बाद उसे सावधानी बरतनी चाहिए। एक ही प्रकार की ग़लती बार-बार करना अक़्लमंदी नहीं है। क़ुरआन में भी अगले समय के लोगों के हालात बयान करने के बाद उनसे शिक्षा ग्रहण करने के निर्देश दिए गए हैं।

जीवन आदर्श

अंतिम पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल.)

अल्लाह की ओर बुलाना



❖मुशर्रफ़ अली

नमाज़

हज़रत जिबरील (अलैहि०) अक्सर आने लगे। वे क़ुरआन की कुछ आयतें मुहम्मद (सल्ल०) को सुनाते। उन्हें याद कराकर उनसे सुन लेते और चले जाते। उन आयतों में जो पैग़ाम होता मुहम्मद उनपर अमल शुरू कर देते। एक दिन जब आप मक्का की पहाड़ी के ऊपर थे तो वहीं पर जिबरील आये। उन्होंने एक पत्थर पर ठोकर मारी तो इसमें से पानी का स्रोत फूट निकला जिबरील ने उस पानी से वुज़ू किया ताकि नबी को दिखाएं कि इबादत करने के लिए पवित्रता कैसे हासिल की जाती है। फिर नबी ने भी उसी तरह वुज़ू किया, फिर जिबरील ने उन्हें नमाज़ पढ़कर दिखाया कि नमाज़ कैसे पढ़ी जाती है। मुहम्मद (सल्ल०) ने भी उसी तरह नमाज़ पढ़ी। इसके बाद फ़रिश्ता वहां से चला गया और आप घर वापस आ गये।

आपने ख़दीजा के सामने वुज़ू किया। आपकी देखा-देखी ख़दीजा ने भी वुज़ू किया। फिर आपने नमाज़ पढ़ी ख़दीजा ने भी आपके साथ नमाज़ पढ़ी। अली जो आपके साथ ही रहते थे उन्होंने आपको नमाज़ पढ़ते देखा, रुकूअ (झुकते हुए) और सजदा करते (नत-मस्तक होते हुए) देखा और क़ुरआन की आयतें पढ़ते देखा। वे आपके पास आये और आपसे पूछा कि यह क्या है। मुहम्मद (सल्ल०) ने उन्हें बताया कि यह अल्लाह की इबादत का तरीक़ा है। अल्लाह ने हमें इसी तरीक़े पर चलने का आदेश दिया है। उसने मुझे अपना नबी बनाया है। अभी हम उसके आदेश से नमाज़ पढ़ रहे थे। अली को ये बातें बहुत अच्छी लगीं, वे भी नमाज़ पढ़ने लगे और आपके साथ हो गये। आपने उन्हें जितनी आयतें अवतरित हो चुकी थीं, याद करा दीं। उसी घर में ज़ैद भी रहते थे, वे अली से कुछ बड़े थे। उन्होंने भी नमाज़ पढ़ना सीख लिया और वे भी अल्लाह के नबी मुहम्मद (सल्ल०) पर ईमान ले आए।

दीन का आह्वान

अल्लाह ने इन्सान को ज़मीन पर अपना प्रतिनिधि बनाया है और उसे बहुत प्रतिष्ठा दी है, लेकिन इन्सान अपने बुरे कर्मों के कारण भटक गया। अल्लाह ने उसे केवल अपनी उपासना का आदेश दिया था मगर वह सैकड़ों ख़ुदाओं के सामने सर झुकाने लगा। बहुत से लोग धर्म के ठेकेदार बने बैठे, जो आम लोगों का माल खाते और उन्हें अल्लाह की बन्दगी से रोकते। झूठ, धोखेबाज़ी, मक्कारी, छल-कपट, जुआ, शराब, व्यभिचार आम हो गया। अरब वालों की भी यही हालत थी, बल्कि वहां वंशवाद और आपसी लड़ाइयां हत्या और हत्या के बदले में हत्या का प्रचलन था। इन्हीं

हालात के सुधार के लिए अल्लाह ने मुहम्मद (सल्ल०) को नियुक्त किया और उन्हें स्पष्ट बताया कि—"हमने अपने रसूलों को स्पष्ट निशानियों और मार्गदर्शन के साथ भेजा और उनके साथ किताब और संतुलन उतारा ताकि लोग न्याय पर स्थापित हों।" (क़ुरआन, 57: 25)

अल्लाह ने हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को नबी बनाने का मक़सद बताते हुए यह कहा कि दुनिया में लोगों का निजी रवैया और मानव जीवन की सामूहिक व्यवस्था दोनों न्याय पर स्थापित हो, जिससे समाज में किसी तरह का भी बिगाड़ बाक़ी न रहे। हर व्यक्ति अल्लाह के अधिकार, अपने अधिकार और हर उस व्यक्ति के अधिकार जिससे उसे किसी भी रूप में सामना होता है, अच्छी तरह जान ले और फिर पूरे न्याय के साथ उन्हें अदा करे। साथ ही जो सत्य तुम्हारे पास तुम्हारे रब की ओर से उतारा गया है, उसका प्रचार-प्रसार करो अगर आपने ऐसा नहीं किया तो रसूल होने का दायित्व पूरा नहीं होगा। (क़ुरआन, 5: 67)

यानी अल्लाह ने नबी को यह ज़िम्मेदारी दी थी कि वे उसके दीन को लोगों तक पहुंचा दें। नबी का दायित्व यह था कि भलाई को स्थापित करने के लिए जान की बाज़ी लगा दें। उनकी ज़िन्दगी का मक़सद यह था कि बुराई को किसी भी हाल में पनपने न दें। अतः ज़िम्मेदारी के इस एहसास ने उनको इस काम के लिए एकाग्र कर दिया। उनकी रातों की नींद उड़ गयी और दिन का चैन समाप्त हो गया। उनको उठते-बैठते यही चिन्ता लगी रहती थी कि अल्लाह को भूली हुई दुनिया को किस तरह अल्लाह की याद दिलाएं। जो लोग सत्य मार्ग से भटक गये हैं, उन्हें किस तरह सत्य पर वापस लाएं। आदम की संतान को, जो अपनी बर्बादी की ओर बढ़ रही है, किस तरह बचा लें।

एक अवसर पर अल्लाह के नबी (सल्ल०) ने अपने साथियों से कहा भी : मेरी और तुम लोगों की मिसाल उस व्यक्ति जैसी है, जिसने आग जलायी रौशनी के लिए, मगर पतंगे हैं कि उसपर टूटे पड़ रहे हैं, जल जाने के लिए। वह व्यक्ति कोशिश करता है कि परवाने किसी तरह आग से बचें मगर परवाने हैं कि उसकी एक नहीं चलने देते। ऐसा ही हाल मेरा है कि मैं तुम्हें कमर से पकड़-पकड़कर खींच रहा हूं और तुम हो कि आग में गिरे पड़ते हो।

एक अवसर पर अल्लाह के नबी (सल्ल०) ने अपने साथियों से कहा भी : मेरी और तुम लोगों की मिसाल उस व्यक्ति जैसी है, जिसने आग जलायी रौशनी के लिए, मगर पतंगे हैं कि उसपर टूटे पड़ रहे हैं, जल जाने के लिए। वह व्यक्ति कोशिश करता है कि परवाने किसी तरह आग से बचें मगर परवाने हैं कि उसकी एक नहीं चलने देते। ऐसा ही हाल मेरा है कि मैं तुम्हें कमर से पकड़-पकड़कर खींच रहा हूं और तुम हो कि आग में गिरे पड़ते हो।

अबू-क़हाफ़ा के बेटे अबू-बक्र मुहम्मद (सल्ल०) के अच्छे दोस्त थे। वे आपकी सच्चाई और ईमानदारी से बहुत प्रभावित रहते थे। वे ख़ुद भी सच्चे और ईमानदार आदमी थे। मुहम्मद (सल्ल०) ने उन्हें भी अल्लाह के दीन के बारे में बताया। उन्हें क़ुरआन की कुछ आयतें सुनायीं। वे तुरन्त ईमान ले आये और बोले आपने सच कहा और सच कहना आपका काम है, मैं गवाही देता हूं कि अल्लाह के सिवाय कोई उपास्य नहीं है और आप अल्लाह के रसूल हैं।

अबू-बक्र बहुत ही दयालु और उदार हृदय वाले आदमी थे। वे एक धनवान व्यापारी थे और बहुत समझदार एवं तत्वदर्शी थे। मक्का में उनका बहुत प्रभाव था। मक्का के प्रतिष्ठित व्यक्ति भी उनसे सुझाव लेकर ही कोई बड़ा काम करते थे। जब अबू-बक्र ईमान ले आए तो मक्का के कई भले लोग उनसे प्रेरित होकर ईमान में आ गये। उनकी वजह से इस्लाम की चर्चा चुपके-चुपके कई लोगों में फैली और मुसलमानों की संख्या में वृद्धि होती गयी। उस ज़माने में वे लोग ईमान लाये, जो पहले से ही सत्य की खोज में थे। ये ऐसे लोग थे, जो स्वाभाविक रूप से नेक और भले थे। ये लोग शराब नहीं पीते थे, ब्याज, जुए आदि से भी दूर थे यहां तक कि मूर्तिपूजा भी नहीं करते थे। वे ख़ुद को इबराहीम (अलैहि०) का अनुयायी मानते थे।

लेकिन यह सब कुछ बहुत गुप्त रूप से हुआ। अभी अल्लाह की ओर से जनघोषणा का आदेश नहीं आया था। जो लोग ईमान लाते थे वे अपने बहुत घनिष्ठ साथी को ही इसके बारे में बताते। आम जन को अभी इसकी ख़बर नहीं थी। ईमान स्वीकार करते ही लोगों पर नमाज़ पढ़ना अनिवार्य हो जाता था। जब नमाज़ का समय होता तो नबी (सल्ल०) किसी घाटी में चले जाते और वहीं नमाज़ अदा करते। इसी

तरह क़ुरआन पढ़ना होता था, आयतें याद करनी होती तो बस्ती के बाहर चले जाते। जिन लोगों ने पहले दीन क़ुबूल किया था वे नये आने वालों को क़ुरआन की आयतें और सूरतें याद करवाते। उस ज़माने में नबी (सल्ल०) पर छोटी-छोटी और बहुत ही आकर्षक आयतों का अवतरण होता था। उन आयतों में दिल को लुभाने वाली मिठास होती थी। उन आयतों में अपनी अन्तरात्मा के पवित्रीकरण पर ज़ोर दिया जाता था। उनमें स्वर्ग और नरक का चित्रण इस तरह किया जाता था, जैसे वे आंखों के सामने हैं। ये आयतें ईमान वालों को उस समय के मानव समाज से अलग एक सवर्णिम समाज की सैर कराती थीं।

इस तरह गुप्त रूप से दीन के फैलाने का काम तीन वर्षों तक चलता रहा और 40 से कुछ ज़्यादा मज़बूत और अडिग ईमान वालों का एक ठीक-ठाक समूह तैयार हो गया, जिसमें पुरुष भी थे और महिलाएं भी। तीन वर्ष के बाद हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को उनके अपने सगे-संबंधियों को दीन की ओर बुलाने का ईश्वरीय आदेश हुआ।

इस आदेश के बाद हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने अपने परदादा हाशिम के वंशजों के परिवार में से लगभग 45 लोगों को खाने पर बुलाया। खाने के बाद हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के चचा अबू-लहब ने अपनी बात शुरू कर दी और मुहम्मद (सल्ल०) को कुछ कहने का मौक़ा ही नहीं दिया। दो-तीन दिन के बाद आपने उन लोगों को फिर जमा किया और इन शब्दों में अपनी बात रखी–

"सारी प्रशंसा अल्लाह के लिए है, मैं उसकी स्तुतिगान करता हूं और उसी से सहायता चाहता हूं। उसपर ईमान रखता हूं और उसी पर भरोसा करता हूं। मैं यह गवाही देता हूं कि अल्लाह के सिवा कोई भी पूज्य नहीं है। वह अकेला है उसका कोई साझी नहीं। अल्लाह की क़सम जिसके सिवा कोई पूज्य नहीं मैं लोगों की तरफ़ उसी का भेजा हुआ रसूल (संदेशवाहक) हूं। अल्लाह की क़सम तुम लोग उसी तरह मर जाओगे, जिस तरह सो जाते हो और उसी तरह उठाये जाओगे जिस तरह सोकर उठते हो। फिर जो कुछ तुम करते हो उसका तुम से हिसाब लिया जाएगा। इसके बाद तुम्हें अपने कर्मों के आधार पर या तो हमेशा के लिए स्वर्ग मिलेगा या हमेशा के लिए नरक।"

किसी ने हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की बात का कोई जवाब नहीं दिया। अन्त में चचा अबू-तालिब खड़े हुए और बोले : देखो! मैं तुम्हारी बातों को सच मानता हूं। तुम्हें अल्लाह ने जिस काम का आदेश दिया है उसे पूरा करो, मैं जहां तक मेरे वश में होगा तुम्हारी सहायता करूंगा और तुम्हारी सुरक्षा भी करता रहूंगा। हां लेकिन मेरा मन अपने पूर्वजों के धर्म को छोड़ने के लिए तैयार नहीं है। इस बात पर अबू-लहब और अबू-तालिब के बीच कुछ विवाद भी हुआ और सभा समाप्त हो गयी।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को यह आदेश मिल चुका था कि वे खुलेआम लोगों को दीन की ओर बुलाएं। इसलिए एक दिन सुबह ही आप मक्का स्थित 'सफ़ा' नाम की पहाड़ी पर चढ़ गये। अरब में प्रचलन था कि जब कोई बहुत ही महत्वपूर्ण घोषणा करनी होती थी तो सुबह-सुबह किसी पहाड़ी पर चढ़कर पुकारते थे। अतः हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने भी सफ़ा की पहाड़ी से पुकार लगायी। पुकार सुनते ही मक्का के सारे लोग पहाड़ी के नीचे जमा हो गये। जो नहीं आ सकते थे उन्होंने अपने प्रतिनिधि भेज दिये। इसके बाद अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने कहा कि अगर मैं यह सूचना दूं कि पहाड़ी की दूसरी ओर एक सेना खड़ी है, जो मक्का पर चढ़ाई करने वाली है, तो क्या तुम लोग मेरी बात पर विश्वास करोगे?

लोगों ने एक शब्द होकर कहा, 'हां!' क्योंकि हमारा अनुभव है कि तुम कभी झूठ नहीं बोले।'

फिर आपने कहा, 'तो सुनो मैं अल्लाह की ओर से तुम्हें सचेत करने के लिए भेजा गया हूं।' फिर आपने उन्हें एक अल्लाह पर ईमान लाने, मुहम्मद को अल्लाह का रसूल मानने और दुनिया में मर जाने के बाद परलोक में दुबारा उठाये जाने और अपने कर्मों का हिसाब देने पर ईमान लाने को कहा। आपने अपने निकटतम सम्बन्धियों में से कई एक का नाम लेकर उनपर यह स्पष्ट किया कि रिश्तेदार होने के बावजूद मैं अल्लाह के यहां तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकूंगा। अल्लाह के दीन को अपनाकर उसके अनुसार जीवन बिताने में ही तुम्हारी भलाई है।

अल्लाह के रसूल की इस पुकार की गूंज मक्का की हरेक गली में सुनायी पड़ने लगी और इसपर चर्चा-परिचर्चा होने लगी। इसी बीच आपको अल्लाह का आदेश मिला कि मूर्तिपूजा और बहुदेववाद की वास्तविकता लोगों को खोल-खोलकर बताइये। अतः आपने बताना शुरू किया कि ये गढ़े हुए उपास्य कितने अक्षम और कमज़ोर हैं। आपने उदाहरण देकर बताना शुरू किया कि जो इन्हें पूजता है और इन्हें अल्लाह और बन्दे के बीच माध्यम समझता है, वह सीधे रास्ते से भटका हुआ है। ■■

“सदक़े से माल में कमी नहीं आती।
भलाई के कामों में
ख़र्च करो,
तुम पर
ख़र्च किया
जाएगा।”

(हदीस : मुस्लिम, बुख़ारी)



A Well Wisher

Dr. Waseem Ahmad
Agra (UP)

सबसे बड़ा जोखिम

❖आयशा सुल्ताना

अक्सर हम जीवन को एक सुरक्षित ढांचे में समेट लेना चाहते हैं। एक तय नौकरी, तय दिनचर्या और तय सोच के साथ। लगता है कि बस यही स्थिरता जीवन की सफलता है। लेकिन समय के साथ यह स्थिरता धीरे-धीरे जड़ता में बदलने लगती है। सवाल यह है कि क्या हम केवल सुरक्षित रहने के लिए जी रहे हैं, या सचमुच अपने भीतर छिपी क्षमताओं को पहचानने और निखारने का साहस रखते हैं?



जीवन का वास्तविक मर्म मात्र सुरक्षा, सुविधा और यथास्थिति के दायरे में क़ैद होकर जी लेना नहीं है, बल्कि स्वयं को निरंतर परीक्षा की अग्नि में तपाते हुए अपने भीतर निहित संभावनाओं को उजागर करना है। मनुष्य को यह संसार केवल विश्राम-स्थल के रूप में नहीं, बल्कि एक परीक्षागृह (इम्तिहान) के रूप में दिया गया है।

जीवन का उद्देश्य ठहर जाना नहीं, बल्कि श्रेष्ठता की ओर अग्रसर होना ही मानवीय कर्तव्य है। जो जीवन को केवल आराम, भयमुक्त सुरक्षा और स्थिरता का पर्याय मान लेता है, वह इस परीक्षा की आत्मा को समझने में चूक करता है। यदि मनुष्य केवल सुरक्षित विकल्पों को चुनते हुए, जोखिम से पलायन करता हुआ, अपने ज्ञान और सामर्थ्य को विकसित किए बिना जीवन गुज़ार दे, तो वह मनुष्य होने के अपने वास्तविक कर्तव्यों से विमुख हो जाता है।

जड़ता पतन की शुरुआत

यदि कोई व्यक्ति ऐसे परिवेश, व्यवसाय या मानसिक ढांचे में बंधा रहे जहां न नवीन ज्ञान का प्रकाश हो, न बौद्धिक चुनौती और न आत्म-विकास का अवसर, तो धीरे-धीरे उसका उत्साह क्षीण होने लगता है। जिज्ञासा की लौ बुझने लगती है और आत्मविश्वास का स्तंभ दरकने लगता है। यह केवल मनोवैज्ञानिक सत्य नहीं, बल्कि आध्यात्मिक पतन की भी भूमिका है।

जिस प्रकार मार्ग अवरुद्ध होने पर एक वेगवती नदी भी सड़ांध और दूषण का शिकार हो जाती है, ठीक उसी प्रकार जब मनुष्य की आंतरिक गति रुक जाती है, तो उसका अंतर्मन कुंठित हो जाता है। क़ुरआन में चेतावनी है कि जिनके दिल बंद हो जाते हैं, उनकी आंखें होते हुए भी वे देख नहीं पाते और कान होते हुए भी वे सुन नहीं पाते। यह बौद्धिक और आत्मिक जड़ता का परिणाम है।

जीवन का एक कटु किंतु अपरिहार्य सत्य यह है कि सबसे बड़ा जोखिम कोई जोखिम न लेना ही है। केवल सुरक्षा की आड़ में अपने स्वप्नों, क्षमताओं और दायित्वों की बलि चढ़ा देना अपनी आत्मा के साथ सबसे बड़ा अन्याय है।

सबसे पहले संकल्प और प्रयास, फिर ईश्वर पर भरोसा—यह क्रम अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। जो व्यक्ति प्रयास से बचकर केवल सुरक्षा चाहता है, वह भरोसे की आत्मा को समझे बिना उसका नाम लेता है। वास्तविक भरोसा वही है जो साहस, जोखिम और कर्म के साथ खड़ा हो।

संघर्ष : आत्म-विकास की भूमि

व्यक्तिगत विकास की पुष्पलता सदैव संघर्ष, असहजता और आत्म-संघर्ष की भूमि पर ही पल्लवित होती है। सहजता मनुष्य को स्थिर करती है, जबकि संघर्ष उसे परिष्कृत करता है।

जब मनुष्य स्वयं को कठिन चुनौतियों के सामने खड़ा करता है, तभी उसकी सुप्त शक्तियां जागृत होती हैं। तभी उसके भीतर छिपा हुआ साहस, धैर्य और विवेक प्रकट होता है। सहज जीवन केवल शरीर को आराम देता है, पर आत्मा को विस्तार नहीं देता।

ज्ञान : जीवन भर चलने वाली साधना

सीखने की प्रक्रिया किसी एक आयु, डिग्री या अनुभव तक सीमित नहीं है। यह जीवन के अंतिम क्षण तक चलने वाली साधना है।

यह प्रार्थना किसी विद्यार्थी के लिए नहीं, बल्कि हर जागरूक मनुष्य के लिए है। आयु, पद या अनुभव—कोई भी अवस्था ऐसी नहीं जहां सीखना समाप्त हो जाए। नवीन कौशल, मौलिक विचार और नवीन दृष्टिकोण ही मनुष्य को जीवंत बनाए रखते हैं।

जीवन का उद्देश्य ठहर जाना नहीं, बल्कि श्रेष्ठता की ओर अग्रसर होना ही मानवीय कर्तव्य है। जो जीवन को केवल आराम, भयमुक्त सुरक्षा और स्थिरता का पर्याय मान लेता है, वह इस परीक्षा की आत्मा को समझने में चूक करता है। यदि मनुष्य केवल सुरक्षित विकल्पों को चुनते हुए, जोखिम से पलायन करता हुआ, अपने ज्ञान और सामर्थ्य को विकसित किए बिना जीवन गुज़ार दे, तो वह मनुष्य होने के अपने वास्तविक कर्तव्यों से विमुख हो जाता है।

स्वयं को शिक्षित और प्रशिक्षित करना सर्वोत्तम निवेश है। इसका प्रतिफल धन से नहीं, बल्कि अटूट आत्मबल, विवेक और स्वतंत्रता के रूप में प्राप्त होता है—ऐसा धन जिसे कोई छीन नहीं सकता।

कर्म और उद्देश्य

कर्म केवल जीविका अर्जन का माध्यम नहीं होना चाहिए, बल्कि उसमें उद्देश्य की सुगंध और उच्च मूल्यों की गूंज भी होनी चाहिए। जब व्यक्ति ऐसे लक्ष्य से जुड़ता है जहां उसकी बुद्धि का विस्तार हो और उसे चुनौतियां मिलें, तब कठिन परिश्रम भी आनंद का रूप ले लेता है। कर्म का मूल्य केवल परिणाम से नहीं, बल्कि उसके उद्देश्य से तय होता है। जब उद्देश्य ऊंचा होता है, तब थकान होती है, पर टूटन नहीं। व्यक्ति जानता है कि उसकी यात्रा अर्थपूर्ण है।

प्रतिदिन अपने भय को परास्त करते हुए एक छोटा-सा क़दम आगे बढ़ाना ही अंततः मंज़िल तक पहुंचाता है। नियति उन्हीं का मार्ग प्रशस्त करती है जो गतिमान रहते हैं, जो साहस के साथ आगे बढ़ते हैं। जीवन निरंतर आगे बढ़ने वालों का पथ स्वयं प्रशस्त करता है। जो व्यक्ति स्वयं को चुनौती देने का साहस रखता है, वही अपने वास्तविक स्वरूप और सामर्थ्य को पहचान पाता है। इसलिए वर्तमान की संतुष्टि में बंधकर रुक जाना बुद्धिमानी नहीं, बल्कि आत्मिक आत्म-समर्पण है।

ज़रूरी नहीं कि हर उत्तर आज ही मिल जाए, लेकिन यह ज़रूरी है कि प्रश्न मरने न पाएं। रुकना आसान है, पर आगे बढ़ना ही जीवन को अर्थ देता है। जो इस सच्चाई को समझ लेता है, वही जीवन को सच में जी पाता है। आगे बढ़ना असहज हो सकता है, डर भी लगता है, रास्ता भी साफ़ नहीं दिखता, पर यही असहजता जीवन को अर्थ देती है। ■■



Whatsapp (9818799223) your complete address with screenshot of payment

इतिहास की प्रासंगिक प्रस्तावना



❖अफ़ज़ल हुसैन
(पूर्व राष्ट्रीय महासचिव, जमाअत इस्लामी हिन्द)

इतिहास वास्तव में मानवता की स्मृति (Memory) है, जो न केवल राष्ट्रों और समूहों के बल्कि संपूर्ण मानव जाति के पिछले अनुभवों के रिकॉर्ड को सुरक्षित रखकर इंसान के सामने प्रस्तुत करता है, ताकि इन अनुभवों की रोशनी में इंसान अपनी वर्तमान स्थिति का अवलोकन करे और अपने भविष्य को भलाइयों से संवारे तथा बुराइयों से सुरक्षित रखने का प्रयास करे।

इस रिकॉर्ड में विभिन्न प्रतिनिधि व्यक्तित्वों, संस्थानों, राष्ट्रों और समूहों के कारनामे एक सुसंगत और निरंतर कार्य-प्रणाली के रूप में हमारे सामने आते हैं, जिन्हें देखकर हम उनके मनोविज्ञान, उनकी प्रवृत्तियों और उनके स्वभाव को समझ सकते हैं, ताकि भविष्य में उनके साथ हम एक अनजान की तरह नहीं, बल्कि एक जानकार की तरह व्यवहार कर सकें।

यह रिकॉर्ड सामूहिक जीवन के लिए चरणों के आधार पर बहुत अधिक, मगर प्रकृति के लिहाज़ से वही महत्व रखता है, जो किसी एक व्यक्ति के जीवन में उसकी स्मरण-शक्ति को प्राप्त है। यदि एक व्यक्ति की याददाश्त उससे छीन ली जाए तो वह निरंतर ग़लतियां करेगा, यहां तक कि अपनी ग़लतियों का स्वयं शिकार होकर रह जाएगा। यदि किसी व्यक्ति के पिछले जीवन का रिकॉर्ड हमारे सामने न हो तो हम उसके विषय में सही राय क़ायम नहीं कर सकेंगे और न ही उसके प्रति अपने व्यवहार का सही निर्णय कर सकेंगे।

बिल्कुल यही स्थिति सामूहिक जीवन की भी है कि यदि हम मानव जाति के और स्वयं अपने और उन राष्ट्रों व संस्थानों के, जिनसे हमारा पाला पड़ता है, पिछले रिकॉर्ड से परिचित न हों तो हमारा सामूहिक जीवन ग़लतियों और ग़लतफ़हमियों का पिटारा बनकर रह जाएगा। इसलिए यह आवश्यक है कि हम इस पुराने रिकॉर्ड के पन्नों का कभी-कभी नहीं, बल्कि बार-बार आकलन करते रहें।

लेकिन इतिहास के इस रिकॉर्ड का अवलोकन करने के लिए तीन दृष्टिकोण संभव हैं–

एक दृष्टिकोण केवल वस्तुनिष्ठ अध्ययन का है, अर्थात् घटनाओं और हालात को वैसा ही देखा जाए जैसे वे गुज़रे हैं और उनको ज्यों-का-त्यों देखा जाए।

दूसरा दृष्टिकोण राष्ट्रवादी अध्ययन का है, अर्थात् हम घटनाओं को उस नस्ल, राष्ट्र या देश के समर्थन की भावना से देखें जिससे हमारा संबंध है, इसी आधार पर निष्कर्ष निकालें और इसी आधार पर व्यक्तियों और राष्ट्रों के बारे में राय क़ायम करें।

तीसरा दृष्टिकोण उद्देश्यपूर्ण और सैद्धांतिक है, अर्थात् हम नस्लीय व राष्ट्रीय पूर्वाग्रहों से ऊपर होकर केवल मानव प्रगति एवं कल्याण को लक्ष्य मानकर और भले-बुरे का एक निष्पक्ष मानक सामने रखकर मानव जाति और इसके विभिन्न हिस्सों के कारनामों को जांचें और निष्पक्ष राय ही क़ायम करें।

इनमें से पहला दृष्टिकोण शुद्ध ऐतिहासिक है और इस

नाते उपयोगी है कि इससे सही तथ्य हमारे सामने आते हैं, मगर अपने-आपमें पर्याप्त नहीं है। दूसरे दृष्टिकोण में बहुत आकर्षण है। बिना किसी अतिशयोक्ति के इतिहास के 98 प्रतिशत विद्यार्थियों को इस दृष्टिकोण का आकर्षण अपनी ओर खींच लेता है, क्योंकि हर विद्यार्थी किसी-न-किसी नस्ल, राष्ट्र या देश से संबंध रखता है और उसका स्वार्थ विस्तार पाकर आसानी से व्यक्तिगत स्वार्थ से राष्ट्रीय स्वार्थ में बदल जाता है।

इसलिए वह अपनी और अपने राष्ट्र के दृष्टिकोण से इतिहास का अध्ययन करने की ओर झुकता है। इसमें उसे गर्व के लिए कुछ प्रतीक मिल जाते हैं जिनकी भक्ति का नशा उसे और उसके राष्ट्र को उभरने में मदद देता है। इसी में उसे नफ़रत और शत्रुता के लिए कुछ लक्ष्य भी मिल जाते हैं जिन पर अपने क्रोध को केंद्रित करके वह राष्ट्रीय एकता, प्रतिस्पर्धा और सफलता एवं श्रेष्ठता के उद्देश्य प्राप्त करता है।

लेकिन दुनिया में अक्सर झूठ इसी अध्ययन के आधार पर फैले हैं; अक्सर ज़ुल्म, अन्याय, रक्तपात और राष्ट्रीय व नस्लीय शत्रुताएं इसी के कारण बरपा होती हैं। अक्सर बुरों को अच्छा और उद्दंड लोगों को भक्ति का केंद्र इसी अध्ययन ने बनाया है। अच्छों को बुरा और नेक लोगों को तिरस्कार का पात्र इसी अध्ययन के कारण ठहराया गया है।

इंसानियत को घायल करने और धरती को फ़साद से भरने में इतिहास के अध्ययन की इस पद्धति की कोई कम भूमिका नहीं है। यह रोग दुनिया में बढ़कर इस सीमा तक पहुंच गया है कि अब राष्ट्रीय उद्देश्यों के लिए इतिहास गढ़े जाते हैं। जिन राष्ट्रों का अतीत कुछ न था, वे अपनी इच्छाओं के अनुसार एक पूरा अतीत रच कर रख देते हैं और वर्तमान में जिनसे चुनौती है, उनके अतीत की तस्वीर कोलतार से उकेर कर तैयार कर ली जाती है, ताकि नई पीढ़ियों में उनके विरुद्ध द्वेष पैदा किया जा सके।

रहा तीसरी श्रेणी का अध्ययन, तो वह निश्चित रूप से सबसे बेहतर अध्ययन है, मगर इसके सही परिणाम देने वाला होने का आधार दो बातों पर निर्भर है। एक यह कि स्वयं मानव कल्याण एवं उन्नति का दृष्टिकोण सही हो और भले-बुरे का मानक सही हो; दूसरे यह कि तथ्य, जिन पर तर्क की इमारत उठाई जाती है, वस्तुनिष्ठ अध्ययन (Objective study) के माध्यम से प्राप्त किए गए हों, न कि अपने दृष्टिकोण को सामने रखकर उन्हें एक विशेष सांचे में ढाल लिया गया हो।

इस्लाम चूंकि किसी विशेष राष्ट्रीयता का नाम नहीं है, बल्कि वह एक मार्ग है जो पूर्णतः इंसान और उसके कल्याण से संबंध रखता है और उन पूर्वाग्रहों से उसको किसी प्रकार की रुचि नहीं है जो इंसानों में नस्लीय, राष्ट्रीय और भौगोलिक विभाजनों से पैदा होते हैं। इसलिए इतिहास में उसने यही अंतिम एप्रोच अपनाया है। यदि एक मुसलमान सही इस्लामी मानसिकता के साथ इतिहास का अध्ययन करे तो उसका कर्तव्य यह है कि जहां तक संभव हो, वह तथ्यों को जैसे वे वास्तव में गुज़रे हैं, बिना किसी पूर्वाग्रह के ज्यों का त्यों सामने रखे और फिर इस्लाम ने जो सत्य और असत्य का मानक उसे दिया है, उसी के अनुसार व्यक्तियों, राष्ट्रों और संस्थानों के व्यवहार को जांचकर निष्पक्ष परिणाम निकाले।

ग़लती जहां भी हो, कमी और कोताही जहां भी पाई जाए, उसे बिना किसी संकोच के वहीं उंगली रख देनी चाहिए और खोज लगाना चाहिए कि उसके उत्पन्न होने के कारण क्या हैं और उसने मानव कल्याण एवं उन्नति पर क्या प्रभाव डाला है, कितना और किस तरह? इसी प्रकार जो भी विशेषता जहां जिसमें भी नज़र आए, बिना संकोच उसका उल्लेख करना चाहिए और उसके उपयोगी परिणामों या परिणामहीन रह जाने के कारणों का सुराग़ लगाना चाहिए। ठीक-ठीक यही रवैया है जो क़ुरआन में व्यक्तियों की जीवनियों और राष्ट्रों के इतिहास से चर्चा और तर्क करते हुए अपनाया गया है।

इतिहास के विषय में यह इस्लाम का मार्ग है और मुसलमान का भी यही मार्ग होना चाहिए।

ग़लती जहां भी हो, कमी और कोताही जहां भी पाई जाए, उसे बिना किसी संकोच के वहीं उंगली रख देनी चाहिए और खोज लगाना चाहिए कि उसके उत्पन्न होने के कारण क्या हैं और उसने मानव कल्याण एवं उन्नति पर क्या प्रभाव डाला है, कितना और किस तरह? इसी प्रकार जो भी विशेषता जहां जिसमें भी नज़र आए, बिना संकोच उसका उल्लेख करना चाहिए और उसके उपयोगी परिणामों या परिणामहीन रह जाने के कारणों का सुराग़ लगाना चाहिए। ठीक-ठीक यही रवैया है जो क़ुरआन में व्यक्तियों की जीवनियों और राष्ट्रों के इतिहास से चर्चा और तर्क करते हुए अपनाया गया है।

इतिहास के विषय में यह इस्लाम का मार्ग है और मुसलमान का भी यही मार्ग होना चाहिए। ■■

(संदर्भ : प्रस्तावना आईना-ए-तारीख़, हिस्सा अव्वल)

इतिहास और समकालीन भारत

कथ्य, तथ्य और सत्य



❖सुफ़ियान अहमद

आज के सूचना-प्रौद्योगिकी के युग में इतिहास का प्रश्न केवल अकादमिक नहीं, बल्कि नैतिक और राजनीतिक भी बन चुका है। इतिहास अब पाठ्य-पुस्तकों तक सीमित नहीं; वह टीवी बहसों, सोशल मीडिया अभियानों और चुनावी भाषणों में सक्रिय है। जानकार इतिहास के अध्ययन के तीन प्रमुख दृष्टिकोण बताते हैं—वस्तुनिष्ठ, राष्ट्रवादी और उद्देश्यपूर्ण-सैद्धांतिक।

उदाहरण के लिए, वर्ष 1857 का विद्रोह—क्या वह "सैनिक विद्रोह" था या "प्रथम स्वतंत्रता संग्राम"? वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण कहेगा कि दोनों तत्व मौजूद थे। उद्देश्यपूर्ण दृष्टिकोण यह विचार करेगा कि उस संघर्ष ने भारतीय चेतना को किस प्रकार प्रभावित किया? और राष्ट्रवादी दृष्टिकोण अपने-अपने नायकों की सूची तैयार करेगा। ये तीनों दृष्टिकोण आज भी हमारे चारों ओर सक्रिय हैं।

इतिहास के वस्तुनिष्ठ अध्ययन में घटनाओं को "जस का तस" प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है। उदाहरण के लिए, अशोका के जीवन को लें। वस्तुनिष्ठ अध्ययन हमें बताता है कि कलिंग युद्ध में भारी रक्तपात हुआ, जिसके बाद सम्राट के भीतर गहरा परिवर्तन आया। यह तथ्य है न उसकी महिमा-गाथा, न उसका खंडन।

इतिहास का राष्ट्रवादी अध्ययन इतिहास को राष्ट्रीय गौरव या राष्ट्रीय अपमान के चश्मे से देखता है। इस दृष्टिकोण में चयनात्मक स्मृति काम करती है, कुछ घटनाएं उभार दी जाती हैं और कुछ दबा दी जाती हैं। राष्ट्रवादी दृष्टिकोण का आकर्षण गहरा है। यह सामूहिक आत्म-सम्मान को ऊर्जा देता है, परंतु इसी ऊर्जा से नफ़रत और हिंसा भी जन्म ले लेती है। इतिहास गढ़े जाते हैं, मिथक बनाए जाते हैं, और नई पीढ़ियों को एक तयशुदा भावनात्मक दिशा में ढाला जाता है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में भी हम देखते हैं कि मुग़ल काल, औपनिवेशिक काल या स्वतंत्रता आंदोलन की व्याख्या अक्सर राजनीतिक आवश्यकताओं के अनुरूप बदलती रहती है। गांधी जी और सुभाष चंद्र बोस जैसे व्यक्तित्वों को भी कभी महिमामंडित, तो कभी विवादित बनाया जाता है, यह इस पर निर्भर करता है कि व्याख्याकार की विचारधारा क्या है।

हमारे निकट उद्देश्यपूर्ण और सैद्धांतिक अध्ययन ही इतिहास अध्ययन का आदर्श रूप है, एक ऐसा अध्ययन जो नस्लीय और राष्ट्रीय पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर मानव कल्याण को केंद्र में रखे।

इतिहासकार जब स्वयं किसी वैचारिक पूर्वाग्रह का

शिकार हो जाए, तो इतिहास का चयनात्मक उपयोग शुरू हो जाता है। दुनिया में अनेक संघर्ष ऐसे हैं जिनकी जड़ें इतिहास की एकतरफ़ा व्याख्या में हैं। आज भारत में भी इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों में संशोधन को लेकर बहसें होती हैं। यह स्वाभाविक है कि हर पीढ़ी इतिहास को नए सिरे से पढ़े; परंतु यदि संशोधन का उद्देश्य केवल राजनीतिक वैधता प्राप्त करना हो, तो इतिहास दर्पण नहीं, प्रचार-पत्र बन जाता है।

भारत जैसे बहु-धार्मिक, बहु-भाषिक और बहु-सांस्कृतिक देश में इतिहास केवल अतीत उल्लेख नहीं, वर्तमान की पहचान का आधार भी है। यदि इतिहास को संतुलित और मानव-केंद्रित दृष्टि से पढ़ाया जाए, तो वह विविधता में एकता की भावना को मज़बूत कर सकता है। पर यदि उसे द्वेष की खाद दी जाए, तो वही इतिहास विभाजन की दीवार बन सकता है।

सार यह है कि इतिहास को ऐसा दर्पण बनाया जाए, जिसमें हम अपनी कमियों को भी देख सकें और दूसरों की अच्छाइयों को भी स्वीकार कर सकें। पत्रकारिता, अकादमिक जगत और नीति-निर्माताओं की यह सामूहिक ज़िम्मेदारी है कि इतिहास को तथ्यों के आधार पर प्रस्तुत करें, न कि पूर्वाग्रहों के आधार पर। विश्वविद्यालयों में बहस हो, पर तथ्यपरक हो; मीडिया में चर्चा हो, पर संतुलित हो; और राजनीति में इतिहास का उल्लेख हो, तो वह समाज को जोड़ने के लिए हो, तोड़ने के लिए नहीं।

हमारे निकट इस इतिहास-दृष्टि (Historical Perspective) के लिए एक उत्कृष्ट मानक और नैतिक आधार है—भले और बुरे का निष्पक्ष पैमाना। यहां पवित्र ग्रंथ क़ुरआन में

जानकार इतिहास के अध्ययन के तीन प्रमुख दृष्टिकोण बताते हैं—वस्तुनिष्ठ, राष्ट्रवादी और उद्देश्यपूर्ण-सैद्धांतिक। उदाहरण के लिए, वर्ष 1857 का विद्रोह—क्या वह "सैनिक विद्रोह" था या "प्रथम स्वतंत्रता संग्राम"? वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण कहेगा कि दोनों तत्व मौजूद थे। उद्देश्यपूर्ण दृष्टिकोण यह विचार करेगा कि उस संघर्ष ने भारतीय चेतना को किस प्रकार प्रभावित किया? और राष्ट्रवादी दृष्टिकोण अपने-अपने नायकों की सूची तैयार करेगा। ये तीनों दृष्टिकोण आज भी हमारे चारों ओर सक्रिय हैं।

वर्णित यह सिद्धांत उल्लेखनीय है : "किसी क़ौम की शत्रुता तुम्हें न्याय से न रोक दे; न्याय करो, यही धर्मपरायणता के अधिक निकट है।" (क़ुरआन, 5:8)

यह आयत इतिहास के अध्ययन के लिए भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी न्यायिक चेतना के लिए। यदि किसी राष्ट्र या समुदाय से मतभेद हो, तब भी उसके इतिहास के साथ न्याय होना चाहिए।

इतिहास केवल बीते कल की कहानी नहीं; वह आने वाले कल की दिशा भी है। यदि हम उसे वस्तुनिष्ठ तथ्यों और नैतिक मानकों के साथ पढ़ें, तो वह मानवता के लिए मार्गदर्शक बन सकता है। यदि हम उसे राष्ट्रवादी उन्माद या वैचारिक पूर्वाग्रह का उपकरण बना दें, तो वही इतिहास रक्तपात और विभाजन का कारण बन सकता है। यदि हम उसे दर्पण की तरह उपयोग करें, तो वह हमें हमारी सूरत भी दिखाएगा और सुधार का अवसर भी देगा। यदि हम उसे

कान्ति मासिक के सभी पाठक

कृपया ध्यान दें!

अपना पूरा नाम : .....

पता : .....

पोस्ट ऑफिस : .....

डिस्ट्रिक्ट : .....स्टेट : .....पिन : .....

कांटेक्ट नंबर : .....

नीचे दिए गए व्हाट्सऐप नम्बर पर भेजने की मेहरबानी करें।

धन्यवाद!

व्हाट्सऐप नंबर : 98187 99223

नोट : अपना कांटेक्ट नंबर लिखना न भूलें।

हथियार बना लें, तो वह अंततः हमें ही घायल करेगा।

वर्तमान भारत की बौद्धिक चेतना के सामने सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि हम अपने अतीत को किस दृष्टि से देख रहे हैं। औपनिवेशिक काल में निर्मित इतिहास-दृष्टि ने भारतीय अतीत को कृत्रिम खांचों में विभाजित कर प्रस्तुत किया। जेम्स मिल (James Mill) जैसे इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास को 'हिंदू', 'मुस्लिम' और 'ब्रिटिश' काल में बांटकर एक ऐसा मानसिक ढांचा निर्मित किया, जिसमें यह देश निरंतर सांप्रदायिक संघर्ष की भूमि प्रतीत होता है। यह विभाजन केवल काल-निर्धारण नहीं था; उसने समाज की स्मृति को इस प्रकार आकार दिया कि अतीत स्थायी अंतर्विरोधों का इतिहास लगने लगा। इस काल-विभाजन ने इतिहास को सांस्कृतिक निरंतरता के बजाय धार्मिक संघर्ष की कथा में रूपांतरित कर दिया। औपनिवेशिक शासन के लिए यह इतिहास-दृष्टि उपयोगी थी, क्योंकि विभाजित समाज पर शासन करना सरल होता है।

हमारे निकट उद्देश्यपूर्ण और सैद्धांतिक अध्ययन ही इतिहास अध्ययन का आदर्श रूप है, एक ऐसा अध्ययन जो नस्लीय और राष्ट्रीय पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर मानव कल्याण को केंद्र में रखे। इस इतिहास-दृष्टि (Historical Perspective) के लिए एक उत्कृष्ट मानक और नैतिक आधार है—भले और बुरे का निष्पक्ष पैमाना। यहाँ पवित्र ग्रंथ कुरआन में वर्णित यह सिद्धांत उल्लेखनीय है: "किसी क़ौम की शत्रुता तुम्हें न्याय से न रोक दे; न्याय करो, यही धर्मपरायणता के अधिक निकट है।" (कुरआन, 5:8)

दुर्भाग्यवश स्वतंत्रता के बाद भी इस दृष्टिकोण के प्रभाव पूरी तरह समाप्त नहीं हुए। भारतीय इतिहास को 'हिंदू बनाम मुस्लिम' के द्वंद्व में सीमित कर देना न केवल ऐतिहासिक सरलीकरण है, बल्कि सामाजिक यथार्थ के साथ अन्याय भी है। संघर्ष इतिहास का अंग हैं, परंतु उन्हें ही अंतिम सत्य मान लेना तथ्य और तर्क दोनों की उपेक्षा है। यदि मध्यकालीन भारत केवल प्रतिशोध और आक्रमण का काल होता, तो साझा नगर-जीवन, मिश्रित भाषिक परंपराएं, स्थापत्य की सम्मिलित शैलियां और सांस्कृतिक समन्वय कैसे विकसित होते?

मध्यकालीन भारत को एक साझा ऐतिहासिक अनुभव के रूप में समझना अधिक संतुलित दृष्टिकोण है। सत्ता-संघर्षों के साथ-साथ प्रशासनिक सहयोग, सामाजिक अंतःक्रिया और सांस्कृतिक आदान-प्रदान की निरंतर प्रक्रियाएं सक्रिय थीं। स्थापत्य, साहित्य, संगीत, वेशभूषा और भोजन-संस्कृति में जो सम्मिलित रूप विकसित हुआ, वह किसी एक समुदाय की देन नहीं, बल्कि दीर्घकालिक संवाद का परिणाम था। यह संवाद संघर्ष की छाया में भी चलता रहा और उसने भारतीय समाज की बहुलतावादी संरचना को गढ़ने में निर्णायक भूमिका निभाई।

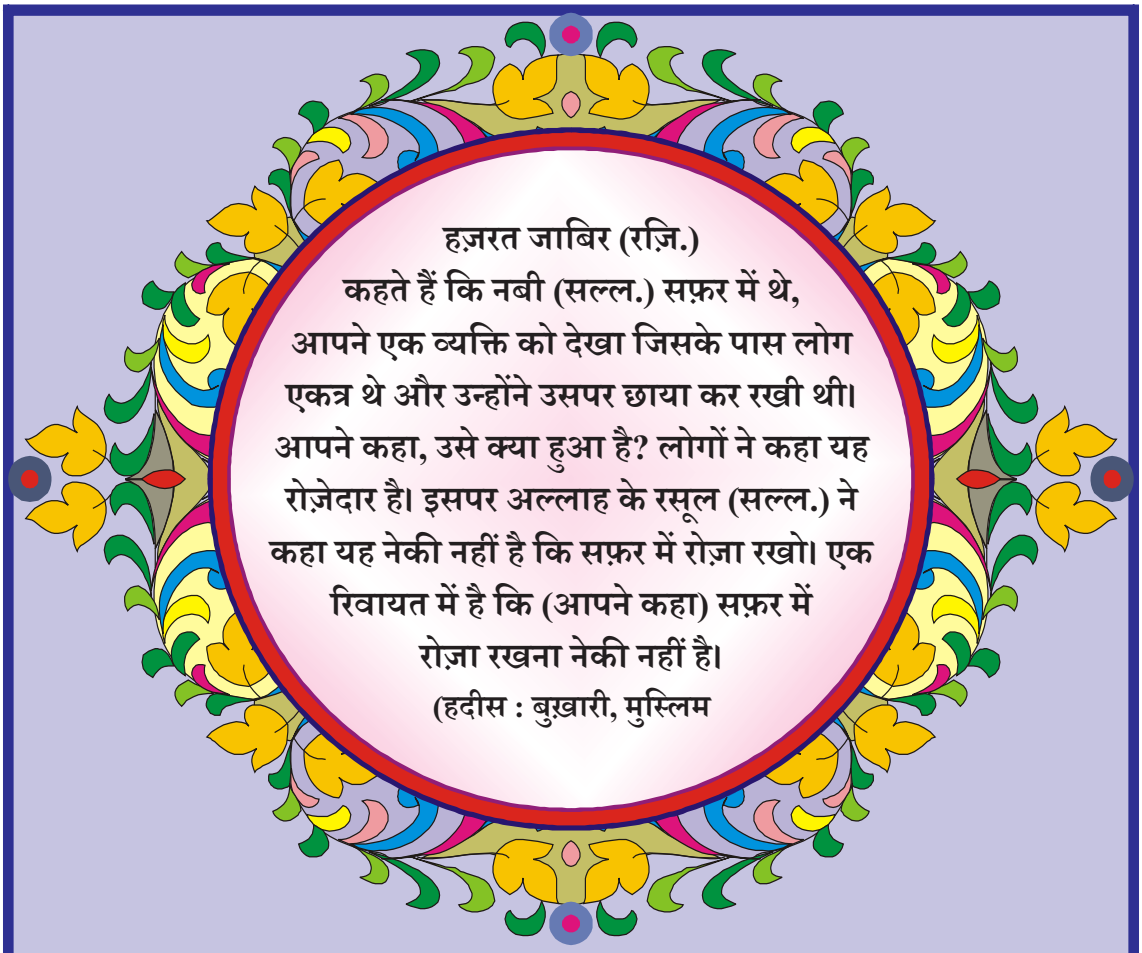
मुसलमानों के भारत आगमन को केवल लूटमार और जबरन धर्मांतरण के आख्यान में सीमित करना भी एकांगी दृष्टिकोण का परिणाम है। आक्रमण और राजनीतिक विस्तार इतिहास का हिस्सा रहे हैं, जैसा कि विश्व के अन्य भूभागों में हुआ। किंतु इसके साथ व्यापारिक संपर्क, सूफ़ी-संत परंपराओं का प्रसार, स्थानीय समाजों से वैवाहिक और सांस्कृतिक संबंध तथा सामाजिक गतिशीलता के आयाम भी जुड़े रहे।

धर्मांतरण की प्रक्रियाएं बहुआयामी सामाजिक, आर्थिक और आध्यात्मिक कारणों से प्रेरित थीं; उन्हें केवल भय या बल से जोड़ देना ऐतिहासिक जटिलताओं को नज़रअंदाज़ करना है।

इतिहास का दायित्व स्मृति को संतुलित रखना है। यदि हम केवल विभाजन की घटनाओं का स्मरण रखें और सहयोग की प्रक्रियाओं को भुला दें, तो हमारी सामूहिक चेतना विषाक्त हो जाएगी। एक संतुलित इतिहास-दृष्टि संघर्षों को स्वीकार करती है, पर उन्हें ही सम्पूर्ण सत्य नहीं मानती; वह आक्रमणों को दर्ज करती है, पर सहयोग और समन्वय को भी समान महत्व देती है।

वस्तुतः इतिहास का उद्देश्य अतीत को वर्तमान की घृणा का औज़ार बनाना नहीं, बल्कि उससे सीख लेकर भविष्य का निर्माण करना है। औपनिवेशिक और सांप्रदायिक सरलीकरणों से ऊपर उठकर यदि हम अपने अतीत को बहुरंगी और बहुआयामी अनुभव के रूप में देखें, तो उसमें हमें संघर्ष के साथ-साथ सहअस्तित्व और संवाद की सशक्त परंपरा भी दिखाई देगी। वही परंपरा समकालीन भारत की वास्तविक शक्ति है। इतिहास को दर्पण बनाकर हम अपनी त्रुटियों को पहचान सकते हैं और अपनी साझा उपलब्धियों को सम्मान दे सकते हैं, यही दृष्टि हमें विभाजन से बचाकर संवाद और सहअस्तित्व की दिशा में अग्रसर कर सकती है। ■■

–उपसंपादक कान्ति



A Well Wisher

Intikhab Khatoon
Shahjahanpur (UP)

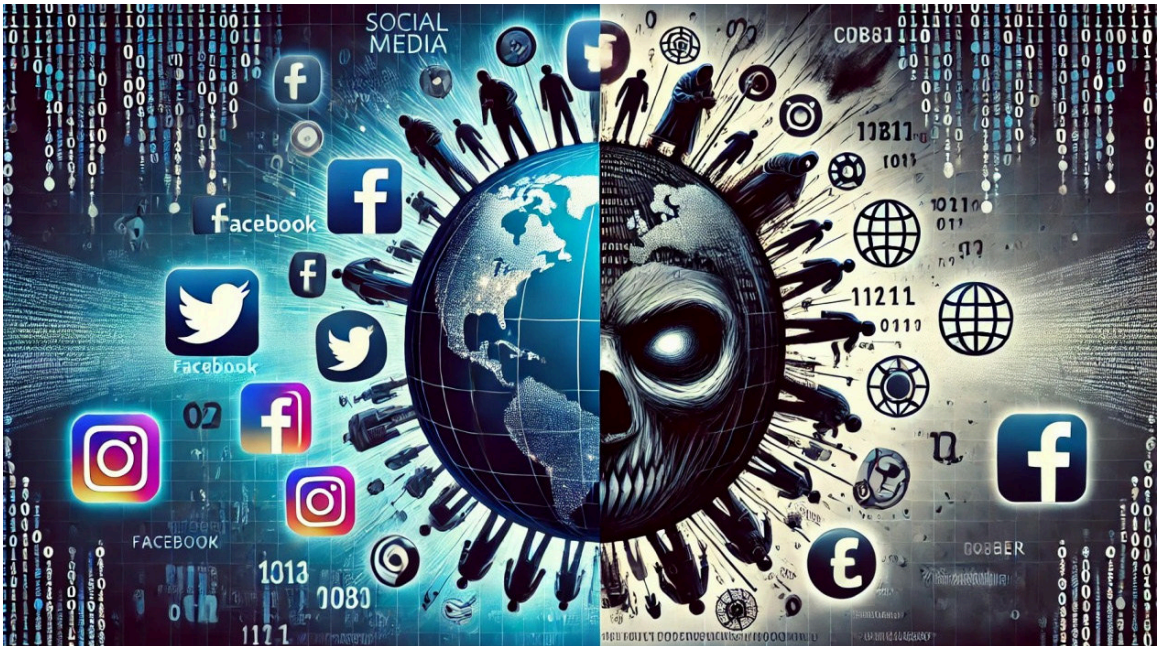
इतिहास का नया रणक्षेत्र

सोशल मीडिया : मिथक और ज़िम्मेदारी

❖डॉ. मुहम्मद इक़बाल सिद्दीक़ी

इसी महीने दिल्ली में आयोजित होने जा रही राष्ट्रीय इतिहास कॉन्फ्रेंस एक ऐसे समय में हो रही है जब इतिहास के स्वरूप और उसके प्रसार की प्रकृति तेज़ी से बदल रही है। कभी इतिहास पुस्तकालयों, विश्वविद्यालयों और शोध पत्रिकाओं की गंभीर बहसों तक सीमित रहता था; आज वही इतिहास लाखों मोबाइल स्क्रीन्स पर दावों, प्रतिदावों, आरोपों और मिथकों के रूप में लगातार घूम रहा है। सूचना की इस तेज़ रफ़्तार दुनिया में सत्य और असत्य के बीच की रेखा इतनी धुंधली हो गई है कि सामान्य पाठक के लिए उन्हें अलग करना कठिन हो जाता है। एक समय था जब इतिहासकार वर्षों के शोध, स्रोतों की आलोचनात्मक जांच और प्रमाणों के परीक्षण के बाद किसी निष्कर्ष तक पहुंचते थे; आज एक व्हाट्सऐप फ़ॉरवर्ड, एक वायरल वीडियो या सोशल मीडिया पोस्ट कुछ ही घंटों में लाखों लोगों की स्मृति में अतीत की एक नई—और कई बार पूरी तरह काल्पनिक—तस्वीर अंकित कर देती है।

पिछले कुछ वर्षों में भारतीय इतिहास से जुड़ी अनेक भ्रामक कथाएं इसी डिजिटल परिदृश्य में तेज़ी से फैलती दिखाई दी हैं। उदाहरण के लिए, केरल में कथित "ब्रेस्ट टैक्स" के विरोध में नंगेली द्वारा अपने स्तन काटकर विरोध करने की



कथा बार-बार वायरल हुई, जिसे कई इतिहासकार लोककथा और अतिरंजना मानते हैं। मुग़लकाल से संबंधित चर्चाओं में जोधा बाई या अनारकली जैसे पात्रों को लेकर भी अनेक दावे किए जाते हैं, जबकि अकबरनामा या तुज़ुक-ए-जहांगीरी जैसे समकालीन स्रोतों में इन कथाओं के स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते। इसी प्रकार स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ी बहसों में यह आरोप भी अक्सर वायरल होता है कि गांधीजी ने भगत सिंह को बचाने का कोई प्रयास नहीं किया, जबकि ऐतिहासिक दस्तावेज़ बताते हैं कि गांधी सहित कई नेताओं ने ब्रिटिश सरकार से

सज़ा कम करने की अपील की थी। अपने वैचारिक मतभेदों के बावजूद गांधी ने भगत सिंह को बचाने के प्रयास किए थे। उन्होंने तत्कालीन भारत के वायसराय लॉर्ड इरविन पर यह दबाव डाला कि भगत सिंह और उनके साथियों की मृत्युदंड की सज़ा को निरस्त कर दिया जाए। गांधी ने दया याचना के लिए पत्र भी लिखे और केवल भगत सिंह के मामले में ही नहीं, बल्कि सैद्धांतिक रूप में मृत्युदंड का विरोध करते हुए क्षमादान की अपील भी की। हालांकि उनके इन प्रयासों को सफलता नहीं मिली, क्योंकि ब्रिटिश सरकार अन्य क्रांतिकारियों को डराने के लिए भगत सिंह के मामले को एक उदाहरण बनाना चाहती थी। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि सोशल मीडिया पर इतिहास कई बार तथ्यों, कल्पनाओं और वैचारिक आग्रहों का मिश्रण बन जाता है।

एक समय था जब इतिहासकार वर्षों के शोध, स्रोतों की आलोचनात्मक जांच और प्रमाणों के परीक्षण के बाद किसी निष्कर्ष तक पहुंचते थे; आज एक व्हाट्सऐप फ़ॉरवर्ड, एक वायरल वीडियो या सोशल मीडिया पोस्ट कुछ ही घंटों में लाखों लोगों की स्मृति में अतीत की एक नई—और कई बार पूरी तरह काल्पनिक—तस्वीर अंकित कर देती है।

इतिहास की इन विकृतियों का प्रभाव केवल अतीत की व्याख्या तक सीमित नहीं रहता; वे अक्सर वर्तमान की राजनीति, पहचान और सामुदायिक संबंधों को भी प्रभावित करने लगती हैं। 2025 के भारत-पाकिस्तान तनाव के दौरान सोशल मीडिया पर ऐतिहासिक युद्धों के एआई-निर्मित वीडियो और काल्पनिक सैन्य घटनाओं के दावे प्रसारित हुए। इसी तरह "आर्यन इनवेज़न थ्योरी" को लेकर या गांधीजी की हत्या के बाद कथित "ब्राह्मण नरसंहार" जैसी अपुष्ट घटनाओं के बारे में भी अनेक पोस्ट व्यापक रूप से साझा किए गए। जब इतिहास इस प्रकार की आधी-अधूरी सूचनाओं और वैचारिक आग्रहों के साथ प्रसारित होता है, तो वह केवल अतीत की चर्चा नहीं रहता; वह सामाजिक स्मृति और सामूहिक पहचान को भी प्रभावित करने लगता है।

उपलब्ध शोध इस समस्या की गंभीरता को और स्पष्ट करते हैं। प्यू (PEW) रिसर्च सेंटर के 2024 के सर्वेक्षण के अनुसार, भारत में 65 प्रतिशत लोग फेक न्यूज़ को एक गंभीर समस्या मानते हैं, जबकि देश में लगभग 49 करोड़ सोशल मीडिया उपयोगकर्ता हैं। मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी (MIT) के एक अध्ययन में पाया गया कि झूठी ख़बरें सत्य की तुलना में लगभग छह गुना तेज़ी से फैलती हैं। इसी पृष्ठभूमि में विश्व आर्थिक मंच की 2024 की रिपोर्ट ने भारत को ग़लत सूचना के उच्च ख़तरे वाले देशों में शामिल किया है।

हालात पूरी तरह निराशाजनक भी नहीं हैं। सोशल मीडिया ने इतिहास को अभूतपूर्व रूप से लोकतांत्रिक बनाया है। अब इतिहास केवल कुछ संस्थानों या विशेषज्ञों का क्षेत्राधिकार नहीं रहा; छात्र, नागरिक और स्वतंत्र शोधकर्ता भी सोशल मीडिया के माध्यम से दस्तावेज़ साझा कर सकते हैं, बहसों में भाग ले सकते हैं और अतीत की समझ को व्यापक समाज तक पहुंचा सकते हैं।

यहीं से हमारे समय का वास्तविक द्वंद्व शुरू होता है। यही डिजिटल मंच जो इतिहास को पहले से कहीं अधिक लोगों तक पहुंचा रहे हैं, कई बार मिथकों और विकृत आख्यानों का विशाल नेटवर्क भी बन जाते हैं। इसी जटिल परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए हम यहां तीन महत्वपूर्ण प्रश्नों की पड़ताल करेंगे—पहला, सोशल मीडिया ने इतिहास को किस प्रकार लोकतांत्रिक बनाया है; दूसरा, किस प्रकार झूठ और दुष्प्रचार ऐतिहासिक स्मृति को विकृत कर रहे हैं; और तीसरा, इस चुनौती के बीच इतिहास की विश्वसनीयता बनाए रखने की ज़िम्मेदारी इतिहासकारों, डिजिटल प्लेटफॉर्म्स और समाज के प्रत्येक नागरिक पर किस प्रकार समान रूप से आती है।

डिजिटल लोकतंत्र : इतिहास सबका, हर जगह

सोशल मीडिया के उदय ने ज्ञान के वितरण की पारंपरिक संरचना को पूरी तरह बदल दिया है। पहले इतिहास का निर्माण और प्रसार मुख्यतः विश्वविद्यालयों, शोध संस्थानों और अकादमिक प्रकाशनों के माध्यम से होता था। आज यह प्रक्रिया कहीं अधिक खुली और सहभागी हो गई है।

भारत में सोशल मीडिया के प्रभाव को समझने के लिए कई अध्ययनों का उल्लेख किया जा सकता है। एक महत्वपूर्ण शोध —The Role of Social Media in Raising Awareness and Constructing Public Policy in India — ने निर्भया (2012) और हाथरस (2020) घटनाओं का अध्ययन करते हुए पाया कि सोशल मीडिया ने जनमत निर्माण और सार्वजनिक नीति पर प्रभाव डालने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ट्विटर (अब X), फेसबुक और अन्य डिजिटल मंचों पर हुई बहसों ने न्याय और जवाबदेही की मांग को राष्ट्रीय विमर्श का हिस्सा बना दिया।

यह उदाहरण दिखाता है कि डिजिटल माध्यम केवल सूचना के आदान-प्रदान का साधन नहीं हैं; वे सामाजिक चेतना और ऐतिहासिक स्मृति के निर्माण में भी सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं।

आज कई विश्वविद्यालयों और इतिहास विभागों ने डिजिटल प्लेटफॉर्म्स का उपयोग शिक्षण में शुरू कर दिया है। ऑनलाइन व्याख्यान, डिजिटल आर्काइव और इंटरेक्टिव चर्चाओं ने छात्रों और शिक्षकों के बीच संवाद को अधिक खुला और व्यापक बनाया है। विश्व बैंक और प्यू रिसर्च के आंकड़ों के अनुसार, भारत में सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं की संख्या लगभग 49 करोड़ तक पहुंच चुकी है, जिससे इतिहास और सामाजिक विज्ञान की चर्चाएं पहले से कहीं अधिक लोगों तक पहुंच रही हैं।

प्रख्यात इतिहासकार रामचंद्र गुहा ने एक साक्षात्कार में कहा था : "सोशल मीडिया ने इतिहास को किताबों से निकालकर सड़कों पर ला दिया है।"

इस कथन में डिजिटल युग की एक महत्वपूर्ण सच्चाई निहित है। इतिहास अब केवल अकादमिक विमर्श नहीं रहा; वह नागरिक बहस का विषय बन गया है। ट्विटर थ्रेड्स, यूट्यूब व्याख्यान और डिजिटल संग्रहालयों ने लोगों को अपने अतीत से जुड़ने के नए अवसर दिए हैं, लेकिन इस लोकतंत्रीकरण की एक क़ीमत भी है। जहां डिजिटल मंच पर प्रमाण और शोध साझा किए जाते हैं, वहीं बिना प्रमाण के दावे और मिथ्या जानकारियां भी फैलाई जाती हैं।

वर्चुअल मिथक : कैसे सोशल मीडिया इतिहास को तोड़-मरोड़ रहा है

डिजिटल युग में इतिहास के सामने सबसे बड़ी चुनौती है —मिसइन्फॉर्मेशन और डिसइन्फॉर्मेशन।

भारत में इतिहास से जुड़ी अनेक भ्रामक कहानियां सोशल मीडिया के माध्यम से तेज़ी से फैलती हैं। उदाहरण के लिए, आर्यन इनवेज़न थ्योरी पर व्हाट्सऐप संदेशों में अक्सर ऐसे दावे किए जाते हैं जो जटिल अकादमिक बहसों को राजनीतिक नारों का रूप दे देते हैं। इसी तरह स्वतंत्र भारत के शुरुआती दशकों के बारे में "नेहरू की ग़लतियों" पर आधारित मीम्स और पोस्ट अक्सर ऐतिहासिक संदर्भों को नज़रअंदाज़ कर देते हैं।

मुग़लकाल और प्राचीन भारतीय इतिहास भी इन बहसों का केंद्र बने हुए हैं। कुछ पोस्ट मुग़लों को भारतीय संस्कृति के संरक्षक के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जबकि अन्य उन्हें केवल विध्वंसक आक्रमणकारी के रूप में चित्रित करते हैं। दोनों ही दृष्टिकोण अक्सर इतिहास की जटिलताओं को सरल राजनीतिक बयानों में बदल देते हैं।

तकनीकी कारक भी इस समस्या को बढ़ाते हैं। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स के 'एल्गोरिदम' ऐसी सामग्री को प्राथमिकता देते हैं जो अधिक प्रतिक्रियाएं उत्पन्न करती है। फेसबुक पेपर्ससे सामने आए तथ्यों से भी पुष्टि होती है कि एल्गोरिदमिक संरचनाएं कई बार उत्तेजक या विवादास्पद सामग्री को बढ़ावा देती हैं।

इसके अलावा "इको चैंबर" प्रभाव भी महत्वपूर्ण है। इसमें उपयोगकर्ताओं को मुख्यतः वही सामग्री दिखाई देती है जो उनके पूर्वाग्रहों की पुष्टि करती है। परिणामस्वरूप भिन्न दृष्टिकोणों के लिए स्थान सीमित हो जाता है।

झूठी ख़बरें अक्सर तेज़ी से इसलिए फैलती हैं क्योंकि सनसनीख़ेज़ और भावनात्मक सामग्री अधिक साझा की जाती है। इसका प्रभाव केवल ऑनलाइन बहस तक सीमित नहीं रहता; कई बार यह सामाजिक तनाव और हिंसा तक पहुंच जाता है। इतिहास की विकृत व्याख्याएं कई बार साम्प्रदायिक विभाजन को बढ़ाती हैं और राजनीतिक ध्रुवीकरण को बढ़ावा देती हैं।

फैक्ट-चेकिंग संस्था Alt News के सह-संस्थापक प्रतीक सिन्हा का एक कथन इस स्थिति को रेखांकित करता है : "झूठ इतिहास नहीं बदलता, लेकिन इतिहासकारों को बदल देता है।"

इतिहास की रक्षा : साझा उत्तरदायित्व

इस चुनौती का समाधान केवल एक संस्था के हाथ में नहीं है। यह साझा ज़िम्मेदारी का प्रश्न है।

सबसे पहले, सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स की भूमिका महत्वपूर्ण है। उन्हें कंटेंट मॉडरेशन और तथ्य-जांच के लिए अधिक प्रभावी तकनीकी उपाय अपनाने की ज़रूरत है। X (पूर्व ट्विटर) का Community Notes मॉडल इस दिशा में एक दिलचस्प प्रयोग है, जिसमें उपयोगकर्ता स्वयं भ्रामक सामग्री पर संदर्भ जोड़ सकते हैं। भारत में सूचना प्रौद्योगिकी नियम 2021 को भी डिजिटल प्लेटफॉर्म्स को अधिक जवाबदेह बनाने की दिशा में एक प्रयास माना जाता है, हालांकि इसके क्रियान्वयन और संभावित दुरुपयोग पर बहस जारी है।

दूसरी ओर, इतिहासकारों और शिक्षाविदों को भी डिजिटल मंचों पर सक्रिय होना होगा। यदि विशेषज्ञ सार्वजनिक संवाद से दूरी बनाए रखते हैं, तो उस ख़ाली स्थान को अक्सर अधूरी या भ्रामक जानकारी भर देती है। डिजिटल साक्षरता भी एक महत्वपूर्ण समाधान है। यूनेस्को की Media and Information Literacy पहल इस दिशा में वैश्विक प्रयास का उदाहरण है। भारत में भी स्कूलों और विश्वविद्यालयों में मीडिया साक्षरता को शिक्षा का हिस्सा बनाया जाना चाहिए। अंततः सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी नागरिकों की है। हर उपयोगकर्ता को यह समझना होगा कि एक क्लिक या फॉरवर्ड केवल सूचना साझा नहीं करता; वह सार्वजनिक स्मृति को प्रभावित करता है जिससे विचार विकृत होते हैं और लोगों के आपसी संबंध प्रभावित होते हैं।

इतिहासकार ई.एच. कार के शब्दों में : "इतिहास अतीत और वर्तमान के बीच निरंतर संवाद है।"

यदि हम ज़िम्मेदारी से इतिहास पढ़ें, जांचें और साझा करें, तो डिजिटल युग केवल भ्रम का युग नहीं रहेगा—वह इतिहास की पुनर्स्थापना का भी युग बन सकता है। और यही वह नैतिक चुनौती है जिसे स्वीकार करना आज हम सबकी साझा ज़िम्मेदारी है।

डिजिटल युग में सच की तलाश

डिजिटल क्रांति ने इतिहास के साथ हमारे संबंध की प्रकृति को गहराई से बदल दिया है। अतीत अब केवल अभिलेखागारों की धूल भरी फाइलों या विश्वविद्यालयों के व्याख्यान कक्षों तक सीमित नहीं रहा; वह हमारी जेबों में रखे मोबाइल फ़ोनों और रोज़मर्रा की डिजिटल बातचीत का हिस्सा बन चुका है। सोशल मीडिया ने इतिहास को सार्वजनिक विमर्श का विषय बना दिया है। विद्यार्थी, शोधकर्ता, स्वतंत्र इतिहास-प्रेमी और सामान्य नागरिक—सभी अब अतीत की चर्चा में भाग ले रहे हैं, स्रोत साझा कर रहे हैं और अपनी समझ के अनुसार ऐतिहासिक घटनाओं की व्याख्या कर रहे हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो इतिहास पहले से कहीं अधिक खुला, सहभागी और लोकतांत्रिक हुआ है—ज्ञान के प्रसार की यह प्रक्रिया अपने आप में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

लेकिन इसी परिवर्तन ने इतिहास को एक नई चुनौती के सामने भी ला खड़ा किया है। जब सूचना की रफ़्तार प्रमाण और विवेक की प्रक्रिया से बढ़ जाती है, तब इतिहास अध्ययन का विषय कम और निजी या अपने समूह के विचारों के प्रचार का साधन अधिक बनने लगता है। अधूरी जानकारियां, भावनात्मक दावे और पूर्वाग्रहों से प्रेरित क़िस्से मिलकर ऐसे मिथक रच देते हैं जो धीरे-धीरे सामूहिक स्मृति का हिस्सा बनने लगते हैं। तब इतिहास केवल अतीत को समझने का माध्यम नहीं रह जाता; वह वर्तमान की राजनीति, पहचान और सामाजिक विमर्श को प्रभावित करने वाला शक्तिशाली औज़ार भी बन जाता है।

यही कारण है कि दिल्ली में आयोजित होने वाली राष्ट्रीय इतिहास कॉन्फ्रेंस केवल एक अकादमिक आयोजन नहीं, बल्कि हमारे समय की एक महत्वपूर्ण बौद्धिक आवश्यकता है। ऐसे मंच इतिहासकारों, पत्रकारों, शिक्षकों और जागरूक नागरिकों को एक साथ लाते हैं ताकि वे इस मूल प्रश्न पर विचार कर सकें कि डिजिटल युग में सत्यनिष्ठ इतिहास को कैसे सुरक्षित रखा जाए। यह संवाद हमें याद दिलाता है कि इतिहास केवल घटनाओं का संग्रह नहीं, बल्कि समाज की नैतिक स्मृति है।

यदि हम ज़िम्मेदारी से इतिहास पढ़ें, जांचें और साझा करें, तो डिजिटल युग केवल भ्रम का युग नहीं रहेगा—वह इतिहास की पुनर्स्थापना का भी युग बन सकता है। और यही वह नैतिक चुनौती है जिसे स्वीकार करना आज हम सबकी साझा ज़िम्मेदारी है। ■■

मध्यकालीन भारत की साझा विरासत : सूफी तहरीक और भक्ति आंदोलन

❖ग़ौस सीवानी

भक्ति आंदोलन और सूफ़ी विचार मध्यकालीन भारत में धार्मिक मेल-जोल, प्रेम और मानवता की साझा आध्यात्मिक धारा थे। दोनों ने जाति-पांति, धार्मिक रूढ़िवाद और बाहरी रीति-रिवाजों के बजाय सीधे ईश्वर से प्रेम, एकाग्रता और सामाजिक समानता पर ज़ोर दिया। सूफ़ियों की शिक्षाओं और भक्ति संतों ने भारतीय समाज में प्रेम और भाईचारे को बढ़ावा दिया, जिससे हिंदू-मुस्लिम भाईचारा मज़बूत हुआ।

सूफ़ियों और भक्ति आंदोलन के संतों के संदेश में अनेक समानताएं थीं। दोनों ही एक ईश्वर में विश्वास रखते थे, भले ही उनके ईश्वर-चिंतन में कुछ अंतर रहा हो। दोनों ही आध्यात्मिक प्रेम पर ज़ोर देते थे, सभी मनुष्यों को बराबर मानते थे और ऊंच-नीच या धार्मिक भेदभाव के विरुद्ध थे। दोनों ही आंतरिक शुद्धता और भगवान के साथ आध्यात्मिक संबंध को महत्वपूर्ण मानते थे।

सूफ़ियों और भक्ति आंदोलन के संतों के संदेश में अनेक समानताएं थीं। दोनों ही एक ईश्वर में विश्वास रखते थे, भले ही उनके ईश्वर-चिंतन में कुछ अंतर रहा हो। दोनों ही आध्यात्मिक प्रेम पर ज़ोर देते थे, सभी मनुष्यों को बराबर मानते थे और ऊंच-नीच या धार्मिक भेदभाव के विरुद्ध थे। दोनों ही आंतरिक शुद्धता और भगवान के साथ आध्यात्मिक संबंध को महत्वपूर्ण मानते थे।

साझा आध्यात्मिक धारा

भारत विश्व के सबसे प्राचीन बसे हुए देशों में से एक है। कुछ मतों के अनुसार, पहले मानव आदम (अलैहिस्सलाम) इसी धरती पर आये थे। इस दृष्टि से सबसे पहले ईश्वर का संदेश भी यहीं आया होगा। इंसान को राह दिखाने के लिए ईश्वर ने हर क्षेत्र में पैग़म्बर भेजे। ऐसे में यह असंभव नहीं कि भारत में भी पैग़म्बर आए हों या कोई दिव्य ग्रंथ उतरा हो। इसी कारण यहां का एक हिस्सा सदा से एकेश्वरवाद (तौहीद) का मानने वाला रहा है और सत्य की खोज में लगा रहा है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक और भारतीय समाज का गहरा अध्ययन करने वाले अबू-रैहान अल-बैरूनी ने अपनी प्रसिद्ध कृति किताब अल-हिंद में भारतवासियों के धर्म के संबंध में प्राचीन ग्रंथों के आधार पर लिखा है–

"सवाल : वह ईश्वर कौन है जिसकी उपासना करने से लाभ मिलता है?

जवाब : वह ईश्वर ऐसा है जो अपने अनादि और एक होने के कारण किसी चीज़ का आश्रय नहीं लेता, न सुख की अपेक्षा करता है और न कष्ट से डरता है। वह सृष्टि के विचारों से स्वतंत्र है, वह सभी विपरीतताओं से ऊपर है। वह सदा से सर्वज्ञ है। बाहरी वस्तुओं से उसका ज्ञान संबंधित है, परंतु उस पर कभी अज्ञान का प्रभाव नहीं पड़ता।"

(किताब-उल-हिंद, प्रथम खंड, द्वितीय अध्याय)

अल-बैरूनी आगे पातंजलि का हवाला देते हुए लिखते हैं–

"उसका ज्ञान सदा एक ही अवस्था में रहता है। वह कभी अज्ञानी नहीं था। अतः उसकी सत्ता ही ज्ञानस्वरूप है। उसने कोई नया ज्ञान प्राप्त नहीं किया, जो पहले उसके पास न हो। जैसे वेद में कहा गया है कि उसकी स्तुति करो, जिसने वेदों के साथ संवाद किया और जो वेदों से पहले से विद्यमान था।"

(किताब-उल-हिंद, प्रथम खंड, द्वितीय अध्याय)

इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि भारत में एक ईश्वर का विचार अत्यंत प्राचीन है। यही भक्ति और सूफ़ी आंदोलन की मूल आध्यात्मिक भूमि है। सूफ़ियों का भी यही विश्वास है कि अल्लाह एक है, अनादि है और सदा रहने वाला है। वह सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है। क़ुरआन की सूरह इख़लास में अल्लाह के गुण इसी प्रकार वर्णित हैं।

भक्ति आंदोलन और सूफ़ी प्रभाव

भक्ति आंदोलन को विशेष बल उस समय मिला जब ईरान और मध्य एशिया से सूफ़ियों का भारत में आगमन हुआ और उन्होंने यहां आध्यात्मिक शिक्षा का कार्य आरंभ किया। सूफ़ी विचारधारा को व्यापक लोकप्रियता मिली। जिन्होंने इसे अपनाया, उन्होंने अपने जीवन में आंतरिक और बाह्य परिवर्तन अनुभव किया; और जिन्होंने सीधे रूप से इसे स्वीकार नहीं किया, उन्होंने भी इसके प्रभाव को महसूस किया।

इसी प्रभाव के परिणामस्वरूप भक्ति आंदोलन को नई दिशा मिली। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सूफ़ी और भक्ति आंदोलन का प्रभाव आज तक भारतीय समाज में गहराई से विद्यमान है।

सूफ़ी शिक्षाओं का प्रभाव

मध्यकालीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास में भक्ति आंदोलन की महत्वपूर्ण भूमिका है। यह आंदोलन हिंदू धर्म-सुधारकों द्वारा प्रारंभ किया गया और समाज पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। यह आंदोलन सूफ़ी शिक्षाओं से प्रभावित था और इसी धारा से आगे चलकर सिख धर्म का उदय हुआ।

सूफ़ी शिक्षाओं में एकेश्वरवाद, तपस्या, मानव-समानता और सेवा-भाव प्रमुख थे। यही तत्व भक्ति आंदोलन में भी स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं।

रीति-रिवाजों में समानता

यद्यपि सूफ़ी और भक्ति आंदोलन की पृष्ठभूमि भिन्न थी, फिर भी कुछ धार्मिक अभिव्यक्तियों में समानता दृष्टिगोचर होती है—जैसे मंदिरों में कीर्तन, ख़ानक़ाहों और दरगाहों में क़व्वाली तथा गुरुद्वारों में गुरबानी। यह सब मध्यकालीन (800–1700 ई.) भारत की सांस्कृतिक चेतना का अंग था।

हिंदू धर्म में एकेश्वरवाद

हिंदू धर्म के प्राचीन ग्रंथों में एकेश्वरवाद की शिक्षा विद्यमान थी, जिसे समय के साथ जनसामान्य भूलता गया। सूफ़ी शिक्षाओं ने इस विचार को पुनः जीवित करने में प्रेरक भूमिका निभाई। भारत में अनेक विद्वान और सुधारक उत्पन्न हुए, जिन्होंने हिंदुओं के बीच एकेश्वरवाद पर बल दिया।

इस आंदोलन के प्रमुख नेताओं में आदि शंकराचार्य का नाम उल्लेखनीय है। आगे चलकर चैतन्य महाप्रभु, नामदेव, संत तुकाराम तथा जयदेव आदि ने इसे आगे बढ़ाया। इन सभी का उद्देश्य मूर्तिपूजा की प्रवृत्ति को सीमित कर लोगों को एक ईश्वर की ओर उन्मुख करना था। कश्मीर में शिव-परंपरा का प्रभाव था, इसमें भी एकेश्वरवाद का विचार विद्यमान था। इन सभी संतों ने धर्म को एक केंद्रीय आध्यात्मिक बिंदु पर लाने का प्रयास किया, जो सूफ़ी शिक्षाओं से साम्य रखता था।

भक्ति में एकेश्वरवाद

मध्यकालीन भारत में सूफ़ियों की ख़ानक़ाहों में एकेश्वरवाद का संदेश क़व्वाली के माध्यम से प्रसारित होता था। फ़ारसी और हिंदी कवियों के काव्य में वही विचार भक्ति कवियों—संत कबीर, मीरा बाई, सूरदास आदि की रचनाओं में भी दिखाई देता है। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से ईश्वर की भक्ति और स्तुति पर बल दिया।

पहले सिख गुरु और सिख धर्म के संस्थापक गुरु नानक देव भी इसी व्यापक भक्ति वातावरण से जुड़े थे। उन्होंने जाति-पांति और धार्मिक भेदभाव का विरोध किया।

भक्ति आंदोलन और समाज

ऐतिहासिक साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि सूफ़ी शिक्षाओं ने भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव डाला। उन्होंने समानता और मानवता का संदेश फैलाया। भक्ति आंदोलन भी इसी दिशा में सक्रिय था। कुछ क्षेत्रों में यह इस्लाम के प्रसार में सहायक सिद्ध हुआ, क्योंकि इससे छुआछूत की भावना कम हुई और लोग मुसलमानों के निकट आए। किंतु कुछ क्षेत्रों में इसका प्रभाव इस्लाम के प्रसार को धीमा करने वाला भी रहा।

इतिहासकार शेख़ मुहम्मद इकराम ने 'रूदे-कौसर' (पृष्ठ 496) में लिखा है कि बंगाल और अन्य क्षेत्रों में वैष्णव आंदोलन ने हिंदू समाज में नई जीवन-शक्ति उत्पन्न की और अनेक उपेक्षित वर्गों को सम्मानित स्थान प्रदान किया। परिणामस्वरूप, जिन क्षेत्रों में यह आंदोलन अधिक प्रभावी हुआ, वहां मुसलमानों की संख्या अपेक्षाकृत कम रही।

भक्ति आंदोलन भारत के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर है। इसने समाज में आध्यात्मिक जागरूकता, समानता और सुधार का संदेश दिया। सूफ़ी आंदोलन ने भी समानता और भाईचारे के संदेश से लाखों लोगों को प्रभावित किया। दोनों आंदोलनों ने सामाजिक अन्याय के विरुद्ध कार्य किया।

कुछ स्थानों पर ये एक-दूसरे के पूरक बने और कुछ स्थानों पर वैकल्पिक आध्यात्मिक मार्ग के रूप में सामने आए। अतः भक्ति आंदोलन को न केवल इस्लाम के प्रसार का सहायक कहा जा सकता है और न ही पूर्णतः अवरोधक। यह भारत के जटिल सामाजिक और धार्मिक इतिहास का एक महत्वपूर्ण, बहुआयामी और गहन अध्याय है। ■■

इंडो-इस्लामिक स्थापत्य कला का संवृद्ध इतिहास

❖जुनैद अली

किसी भी राष्ट्र की पहचान केवल उसकी वर्तमान उपलब्धियों से नहीं बनती, बल्कि उसके अतीत की गहराइयों से निर्मित होती है। एक समृद्ध इतिहास किसी देश को विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान, गौरव और आत्म-सम्मान प्रदान करता है। इतिहास केवल अतीत की घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण नहीं होता, बल्कि वह समाज की सामूहिक स्मृति का दर्पण भी है। यह सांस्कृतिक विरासत को जीवित रखता है, नागरिकों में एकता और देश-प्रेम की भावना का संचार करता है तथा आने वाली पीढ़ियों को मानवीय मूल्यों और नैतिकता की शिक्षा देता है। अतीत के संघर्षों, संकटों और अनुभवों से मिली सीख समाज को भविष्य के लिए बेहतर दिशा प्रदान करती है। यही कारण है कि इतिहास किसी भी राष्ट्र के बौद्धिक और नैतिक विकास का आधार माना जाता है।

यदि विश्व इतिहास पर दृष्टि डाली जाए तो अनेक महान सभ्यताओं का उल्लेख मिलता है, जिनके अवशेष आज भी मानव सभ्यता की विकास यात्रा का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। पिछले दो हज़ार वर्षों के वैश्विक इतिहास में भारत का स्थान विशेष रूप से महत्वपूर्ण रहा है। विविधताओं से भरे इस देश ने अनेक संस्कृतियों, भाषाओं और धर्मों को अपने भीतर समाहित करते हुए सह-अस्तित्व और सामंजस्य का अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किया है।

भारतीय इतिहास में अनेक ऐसी घटनाएं मिलती हैं जो विरोध के बजाय आपसी सम्मान, सहयोग और प्रेम की परंपरा को उजागर करती हैं।

इतिहास के नैतिक पक्ष को समझने में कला और स्थापत्य अत्यंत प्रभावशाली माध्यम सिद्ध होते हैं। भारत की बहुसंख्यक आबादी सदियों से हिंदू परंपराओं से जुड़ी रही है, इसलिए मंदिरों का व्यापक निर्माण स्वाभाविक था। किंतु ऐतिहासिक प्रमाण यह भी दर्शाते हैं कि कई मुस्लिम शासकों ने मंदिरों के संरक्षण और रख-रखाव में भी योगदान दिया। दूसरी ओर भारत में मस्जिदों की विशाल संख्या और उनके स्थापत्य वैभव से यह भी स्पष्ट होता है कि मुस्लिम शासकों ने अपने शासनकाल में धार्मिक और सांस्कृतिक संरचनाओं के निर्माण को प्रोत्साहित किया। इन निर्माणों ने भारतीय स्थापत्य कला को एक नया स्वरूप प्रदान किया जिसे आज "इंडो-इस्लामिक वास्तुकला" के नाम से जाना जाता है।

भारत में इस्लामी स्थापत्य परंपरा का प्रारंभिक उदाहरण केरल की चेरामन जुमा मस्जिद को माना जाता है, जिसका निर्माण सातवीं शताब्दी में हुआ था। इसके बाद देश के विभिन्न क्षेत्रों में मस्जिदों का निर्माण धीरे-धीरे बढ़ता गया। भोपाल की ताज-उल-मसाजिद भारत की सबसे विशाल मस्जिदों में से एक है, जिसमें एक समय में बड़ी संख्या में नमाज़ी इबादत कर सकते हैं।

दिल्ली की जामा मस्जिद, हैदराबाद की मक्का मस्जिद, अहमदाबाद की जामा मस्जिद, आगरा की मोती मस्जिद और जौनपुर की अटाला मस्जिद जैसी ऐतिहासिक संरचनाएं न केवल धार्मिक महत्व रखती हैं बल्कि स्थापत्य कला के उत्कृष्ट नमूने भी हैं। इन मस्जिदों की विशेषता यह है कि इनमें मुग़ल, फ़ारसी, तुर्की और स्थानीय भारतीय शैलियों का सुंदर समन्वय दिखाई देता है।

सामान्य धारणा यह है कि मस्जिदें केवल नमाज़ अदा करने का स्थान होती हैं, किंतु वास्तव में उनका सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व कहीं अधिक व्यापक है। मस्जिदें समुदाय के सामाजिक जीवन का केंद्र होती हैं, जहां लोग केवल इबादत ही नहीं करते बल्कि आपसी संवाद, परामर्श और सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए भी एकत्र होते हैं। मस्जिदों का एक महत्वपूर्ण पहलू समानता का सिद्धांत है, जहां अमीर-ग़रीब, उच्च-निम्न सभी लोग एक ही पंक्ति में खड़े होकर प्रार्थना करते हैं। यह व्यवस्था सामाजिक समानता और भाईचारे का व्यावहारिक उदाहरण प्रस्तुत करती है।

मस्जिदों का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य शिक्षा और ज्ञान के प्रसार से भी जुड़ा रहा है। परंपरागत रूप से कई मस्जिदों के साथ मदरसे संचालित होते रहे हैं जहां धार्मिक शिक्षा के

साथ-साथ नैतिक और सामाजिक मूल्यों की भी शिक्षा दी जाती है। इस प्रकार मस्जिदें केवल धार्मिक केंद्र ही नहीं, बल्कि ज्ञान और जागरूकता के भी केंद्र के रूप में कार्य करती रही हैं। इसके अतिरिक्त समाज के आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्गों की सहायता के लिए ज़कात जैसी व्यवस्थाओं के माध्यम से संसाधनों का वितरण भी मस्जिदों के माध्यम से किया जाता रहा है।

भारतीय इतिहास में मुस्लिम शासकों के आगमन के साथ स्थापत्य गतिविधियों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। मस्जिदों, मकबरों, दरगाहों, बाग़ों, सरायों, मदरसों और क़िलों का व्यापक निर्माण हुआ। सातवीं और आठवीं शताब्दी में अरब व्यापारियों और सूफ़ी-संतों के माध्यम से इस्लामी प्रभाव भारत के तटीय क्षेत्रों तक पहुंचा। बाद में तुर्क शासकों द्वारा दिल्ली सल्तनत की स्थापना के बाद बड़े पैमाने पर स्थापत्य निर्माण कार्य प्रारंभ हुए। इन निर्माणों की विशेषता यह थी कि स्थानीय कला और परंपराओं को अस्वीकार नहीं किया गया, बल्कि उन्हें इस्लामी स्थापत्य शैली के साथ संयोजित किया गया।

इसी संयोजन से इंडो-इस्लामिक वास्तुकला का विकास हुआ, जिसमें मेहराब, गुंबद, मीनार, ज्यामितीय आकृतियां और सुलेख कला प्रमुख तत्व के रूप में उभरे। इस शैली में लाल बलुआ पत्थर, संगमरमर और टाइलों का व्यापक उपयोग किया गया। समय के साथ यह स्थापत्य शैली इतनी विकसित हो गई कि इसे चार प्रमुख क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया—दिल्ली सल्तनत की शाही शैली, मुग़ल शैली, प्रांतीय शैली (जैसे गुजरात, बंगाल, जौनपुर) और दक्कनी शैली (जैसे बीज़ापुर और गोलकुंडा)। इन सभी शैलियों में स्थानीय सांस्कृतिक प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं।

मुग़ल काल में यह स्थापत्य कला अपनी पराकाष्ठा पर पहुंची। दिल्ली का लाल क़िला, आगरा का क़िला और फ़तेहपुर सीकरी जैसे स्मारक इस बात के प्रमाण हैं कि उस समय वास्तुकला केवल शक्ति प्रदर्शन का साधन नहीं थी, बल्कि सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का माध्यम भी थी। इसी परंपरा में मीनारों का निर्माण भी विशेष महत्व रखता था। दिल्ली की क़ुतुबमीनार और दौलताबाद की चांद मीनार जैसे उदाहरण न केवल स्थापत्य कौशल का प्रदर्शन करते हैं, बल्कि उस समय की राजनीतिक शक्ति और सांस्कृतिक पहचान को भी प्रतिबिंबित करते हैं।

इंडो-इस्लामिक स्थापत्य की एक महत्वपूर्ण श्रेणी मक़बरों की भी है। ताजमहल इसका सबसे प्रसिद्ध उदाहरण है, जिसे मुग़ल सम्राट शाहजहां ने अपनी पत्नी मुमताज महल की स्मृति में बनवाया था। यह स्मारक आज विश्व धरोहर के रूप में प्रसिद्ध है और भारतीय स्थापत्य कला की उत्कृष्टता का प्रतीक माना जाता है। इसके अतिरिक्त दिल्ली का हुमायूं का मक़बरा, सासाराम का शेरशाह सूरी का मक़बरा, बीज़ापुर का गोल गुम्बद और सिकंदरा का अकबर का मक़बरा भी इस स्थापत्य परंपरा के उल्लेखनीय उदाहरण हैं।

मध्यकालीन काल में व्यापार, यात्राओं और सांस्कृतिक आदान-प्रदान में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई। यात्रियों और व्यापारियों की सुविधा के लिए विभिन्न मार्गों पर सरायों का निर्माण कराया गया। इन सरायों ने न केवल यात्रियों को विश्राम स्थल प्रदान किया बल्कि विभिन्न संस्कृतियों और समाजों के बीच संपर्क और संवाद को भी बढ़ावा दिया।

समग्र रूप से देखा जाए तो इंडो-इस्लामिक स्थापत्य भारत की बहुलतावादी सांस्कृतिक परंपरा का जीवंत प्रतीक है। यह शैली इस बात का प्रमाण है कि विभिन्न संस्कृतियों के बीच संवाद और सहयोग से नई और समृद्ध कलात्मक परंपराएं जन्म लेती हैं। इस स्थापत्य विरासत ने भारत को वैश्विक स्तर पर विशिष्ट पहचान दिलाई है।

वर्तमान समय में जब इतिहास को लेकर अनेक प्रकार की वैचारिक बहसें और विवाद सामने आ रहे हैं, तब यह और भी आवश्यक हो जाता है कि इतिहास को वस्तुनिष्ठ दृष्टि से समझा जाए। इतिहास का उद्देश्य समाज को विभाजित करना नहीं, बल्कि अतीत के अनुभवों से सीख लेकर वर्तमान और भविष्य को बेहतर बनाना है। यदि इतिहास को राजनीतिक या सांप्रदायिक दृष्टिकोण से तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया जाएगा तो इससे समाज में वैमनस्य और अविश्वास की भावना बढ़ सकती है।

भारत की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विरासत की सबसे बड़ी विशेषता उसकी विविधता और समावेशिता रही है। इसलिए यह आवश्यक है कि इतिहास के अध्ययन में संतुलन, तथ्यपरकता और व्यापक दृष्टिकोण को महत्व दिया जाए। यही दृष्टिकोण हमें अतीत की उपलब्धियों से प्रेरणा लेने और एक समावेशी, प्रगतिशील तथा सौहार्दपूर्ण भविष्य की दिशा में आगे बढ़ने की शक्ति प्रदान कर सकता है। ■■

सातवीं सदी : शाश्वत मार्गदर्शन का वैश्विक चरण

❖एफ.ए. मुजीब

मानव इतिहास का गहन अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि ईश्वरीय मार्गदर्शन किसी एक युग, क्षेत्र या समुदाय तक सीमित नहीं रहा। आदिकाल से मनुष्य को नैतिक दिशा देने का क्रम चलता रहा है। इस्लामी दृष्टिकोण के अनुसार, यह सिलसिला आदम से प्रारम्भ होकर विभिन्न कालखंडों में अनेक पैग़म्बरों के माध्यम से आगे बढ़ा। हर युग में समाज की परिस्थितियों, बौद्धिक स्तर और सामाजिक चुनौतियों के अनुरूप मार्गदर्शन प्रदान किया गया। सातवीं सदी ईस्वी में हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) की पैग़म्बरी इसी क्रम की अंतिम और पूर्ण कड़ी के रूप में सामने आई—एक ऐसा ऐतिहासिक क्षण जिसने न केवल अरब, बल्कि पूरी दुनिया की दिशा बदल दी।



सातवीं सदी का वैश्विक परिदृश्य अत्यंत जटिल था। पश्चिम में Byzantine Empire और पूर्व में Sassanian Empire दो महाशक्तियां थीं, जो वर्षों से आपसी संघर्ष में उलझी हुई थीं। 602 से 628 ईस्वी तक चले विनाशकारी युद्धों ने इन साम्राज्यों को भीतर से कमज़ोर कर दिया। राजकोष ख़ाली हो रहे थे, जनता करों के बोझ से दबी हुई थी और धार्मिक मतभेदों ने समाज को विभाजित कर रखा था। राजनीतिक शक्ति के बावजूद नैतिक स्थिरता का अभाव था। सत्ता और वर्गभेद की कठोर संरचना ने आम इंसान को असुरक्षित और असंतुष्ट बना दिया था।

इसी समय दुनिया भौगोलिक रूप से एक-दूसरे के क़रीब आ रही थी। व्यापारिक मार्ग विस्तृत हो रहे थे, सांस्कृतिक आदान-प्रदान बढ़ रहा था और लेखन-पठन की परंपरा सुदृढ़ हो चुकी थी। यूनानी दर्शन, रोमन क़ानून और फ़ारसी प्रशासनिक व्यवस्था संरक्षित होकर आगे बढ़ रहे थे। मानव बुद्धि नए प्रश्न उठा रही थी, परन्तु नैतिक और आध्यात्मिक संतुलन डगमगा रहा था। यह एक ऐसा दौर था जब मानवता को केवल राजनीतिक सुधार नहीं, बल्कि व्यापक नैतिक और आध्यात्मिक पुनर्संतुलन की आवश्यकता थी।

इसी पृष्ठभूमि में अरब प्रायद्वीप का महत्व उभरकर सामने आता है। एशिया, अफ़्रीक़ा और यूरोप के संगम पर स्थित यह क्षेत्र अंतरराष्ट्रीय व्यापार का महत्वपूर्ण मार्ग था। मक्का आर्थिक और धार्मिक दोनों दृष्टियों से केंद्रीय स्थान रखता था। काबा के कारण विभिन्न क़बीले यहां एकत्र होते, तीर्थ करते और साथ ही व्यापारिक गतिविधियां चलतीं। इस प्रकार यह क्षेत्र सांस्कृतिक और वैचारिक संपर्क का केंद्र बन चुका था।

राजनीतिक दृष्टि से अरब समाज क़बीलाई ढांचे में बंटा हुआ था। कोई केंद्रीकृत शासन नहीं था। क़बीलाई अस्मिता सर्वोपरि थी और छोटी-छोटी बातों पर वर्षों तक संघर्ष चलता रहता था। आर्थिक असमानता स्पष्ट थी; धन कुछ प्रभावशाली परिवारों के हाथों में केंद्रित था। सूदख़ोरी, अनाथों की उपेक्षा और कमज़ोर वर्गों का शोषण सामान्य बात थी। महिलाओं और दासों की स्थिति भी सीमित अधिकारों तक सिमटी हुई थी। फिर भी अतिथि-सत्कार, साहस और वचन-पालन जैसे गुण समाज में सम्मानित थे। यह समाज पूरी तरह मूल्यहीन नहीं था, बल्कि एक व्यापक और सर्वमान्य नैतिक ढांचे की प्रतीक्षा में था।

ऐसे परिवेश में हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) ने एकेश्वरवाद

का संदेश प्रस्तुत किया। यह घोषणा कि ईश्वर एक है और उसी के सामने समस्त मानवता उत्तरदायी है, केवल धार्मिक उद्घोषणा नहीं थी; यह सामाजिक क्रांति का सूत्रपात था। इसने नस्ल, रंग, भाषा और वंश के आधार पर श्रेष्ठता के दावों को चुनौती दी। यह बताया गया कि सभी मनुष्य एक ही मूल से उत्पन्न हुए हैं और सच्ची श्रेष्ठता नैतिकता और ईश्वर-चेतना में है।

इस संदेश में आध्यात्मिकता और सामाजिक व्यवस्था का अद्भुत संतुलन था। तौहीद (एकेश्वरवाद) ने मनुष्य को हर प्रकार की दासता से मुक्त कर एक परम सत्ता से जोड़ा। उत्तरदायित्व के सिद्धांत ने व्यक्ति को अपने कर्मों के प्रति सजग किया। सामाजिक न्याय की शिक्षा ने अनाथों, विधवाओं, ग़रीबों और दासों के अधिकारों को सुनिश्चित किया। आर्थिक क्षेत्र में सूद की मनाही और दान-व्यवस्था ने संसाधनों के न्यायपूर्ण वितरण की दिशा दिखाई। परिवार और समाज के लिए स्पष्ट नैतिक सिद्धांत प्रस्तुत किए गए।

यह संदेश किसी एक जाति या भूभाग तक सीमित नहीं था। क़ुरआन का संबोधन समस्त मानवता से था। इसमें आस्था, नैतिकता, न्याय, करुणा और उत्तरदायित्व के ऐसे सिद्धांत प्रस्तुत किए गए, जो समय और स्थान की सीमाओं से परे थे। यह भी घोषित किया गया कि पैग़म्बरी का सिलसिला पूर्ण हो चुका है और अब यही मार्गदर्शन मानवता के लिए अंतिम और सार्वभौमिक संदर्भ होगा।

वर्ष 622 ईस्वी में मदीना की ओर हिजरत (पलायन) के बाद इस विचारधारा को व्यावहारिक स्वरूप मिला। विभिन्न समुदायों के बीच एक लिखित समझौता हुआ, जिसने साझा नागरिकता और पारस्परिक उत्तरदायित्व की नींव रखी। कुछ ही वर्षों में अरब प्रायद्वीप एकजुट हो गया। क़बीलाई विभाजन की जगह नैतिक समुदाय की अवधारणा ने ले ली। नेतृत्व को नैतिक जवाबदेही से जोड़ा गया और शासन को न्याय पर आधारित किया गया।

वर्ष 632 ईस्वी के बाद यह संदेश अरब की सीमाओं से निकलकर व्यापक क्षेत्रों तक पहुंचा। यह केवल राजनीतिक विस्तार नहीं था, बल्कि विचार और मूल्यों का प्रसार था। आने वाली शताब्दियों में इसी आधार पर एक ऐसी सभ्यता विकसित हुई, जिसने ज्ञान, विज्ञान, चिकित्सा और दर्शन में उल्लेखनीय योगदान दिया। बग़दाद, दमिश्क और कॉर्डोबा जैसे नगर ज्ञान और शोध के केंद्र बने। परंतु इस समूची उन्नति की जड़ें सातवीं सदी के उस नैतिक और आध्यात्मिक संदेश में थीं, जिसने ज्ञान को भी ज़िम्मेदारी से जोड़ा।

ऐसे परिवेश में हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) ने एकेश्वरवाद का संदेश प्रस्तुत किया। यह घोषणा कि ईश्वर एक है और उसी के सामने समस्त मानवता उत्तरदायी है, केवल धार्मिक उद्घोषणा नहीं थी; यह सामाजिक क्रांति का सूत्रपात था। इसने नस्ल, रंग, भाषा और वंश के आधार पर श्रेष्ठता के दावों को चुनौती दी। यह बताया गया कि सभी मनुष्य एक ही मूल से उत्पन्न हुए हैं और सच्ची श्रेष्ठता नैतिकता और ईश्वर-चेतना में है।

यदि इतिहास को समग्र दृष्टि से देखा जाए तो सातवीं सदी वह निर्णायक क्षण प्रतीत होती है जब मानवता आंशिक और स्थानीय मार्गदर्शन से आगे बढ़कर एक व्यापक और अंतिम नैतिक ढांचे की ओर अग्रसर हुई। दुनिया परस्पर जुड़ रही थी और उसे ऐसे सिद्धांतों की आवश्यकता थी, जो वैश्विक स्तर पर लागू हो सकें। इस संदर्भ में अंतिम पैग़म्बर का संदेश केवल धार्मिक घटना नहीं, बल्कि ऐतिहासिक पूर्णता का प्रतीक बनकर उभरा।

सातवीं सदी के इस घटनाक्रम से पता चलता है कि इतिहास की महान क्रांतियां केवल राजनीतिक शक्ति से नहीं, बल्कि नैतिक स्पष्टता और आध्यात्मिक गहराई से जन्म लेती हैं। उस युग में प्रस्तुत मार्गदर्शन ने मानवता को एकता, न्याय और उत्तरदायित्व का पाठ पढ़ाया—ऐसा पाठ जो आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना चौदह शताब्दियों पहले था। यही कारण है कि सातवीं सदी को मानव इतिहास के उस वैश्विक मोड़ के रूप में देखा जा सकता है, जहां तकमीले-नुबूवत (ईश्वरीय दूत आवागमन का समापन) के साथ एक शाश्वत और सार्वभौमिक मार्गदर्शन मानवता के लिए स्थापित कर दिया। ■■

मुस्लिम और मुग़ल शासनकाल का आर्थिक परिदृश्य

❖अज़का हयात

भारत में तेरहवीं से अठारहवीं शताब्दी के बीच का समय, जब यहां मुस्लिम राजनीतिक सत्ता स्थापित थी—विशेषकर दिल्ली सल्तनत (1206–1526) और मुग़ल साम्राज्य (1526–1757) का दौर—दक्षिण एशिया के पूर्व-आधुनिक इतिहास के सबसे गतिशील आर्थिक चरणों में से एक माना जाता है। इतिहास-लेखन में प्रायः इस काल को राजनीतिक घटनाओं, सत्ता-संघर्षों और दरबारी प्रसंगों के माध्यम से ही अधिक देखा गया है, परंतु आर्थिक इतिहासकारों के शोध यह स्पष्ट करते हैं कि इन्हीं सदियों के दौरान भारत की कृषि व्यवस्था, राजस्व-प्रशासन, व्यापारिक विस्तार, मुद्रा-स्थिरता और शहरी विकास में गहरे और दूरगामी परिवर्तन हुए।



इस दृष्टि से यह युग किसी प्रकार की आर्थिक जड़ता या ठहराव का नहीं, बल्कि संरचनात्मक विकास और आर्थिक पुनर्गठन का समय था। इसी काल में ऐसे संस्थागत ढांचे और व्यवस्थाएं विकसित हुईं, जिन्होंने आगे चलकर भारत की आरंभिक आधुनिक अर्थव्यवस्था की नींव को मज़बूत किया।

इतिहासकार इरफ़ान हबीब और तपन रायचौधुरी का मत है कि मुग़ल काल में भारत में एक अत्यंत संगठित कृषि-राजस्व प्रणाली विकसित हुई थी, जो सुव्यवस्थित प्रशासनिक तंत्र और विस्तार पाते बाज़ारों के सहारे संचालित होती थी। दूसरी ओर अर्थशास्त्री एंगस मैडिसन के व्यापक आर्थिक आकलनों से यह संकेत मिलता है कि सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में वैश्विक सकल उत्पादन (GDP) में भारत की भागीदारी लगभग एक-चौथाई से एक-तिहाई के बीच थी। यह तथ्य उस समय भारत की आर्थिक उत्पादकता और व्यापक आर्थिक शक्ति के असाधारण स्तर को दर्शाता है।

भू-राजस्व और कृषि

दिल्ली सल्तनत के समय भूमि-राजस्व व्यवस्था मुख्यतः इक़्ता प्रणाली पर आधारित थी। इस व्यवस्था के अंतर्गत राज्य अपनी आय के स्रोत, विशेषकर भूमि से प्राप्त राजस्व, को सैन्य अधिकारियों और अमीरों को सौंप देता था। बदले में वे राज्य को सैन्य सेवाएं प्रदान करते थे और अपने क्षेत्रों से लगान वसूल करते थे। यह व्यवस्था प्रशासन और सैन्य नियंत्रण बनाए रखने के लिए उपयोगी तो थी, परंतु इसमें भूमि के व्यवस्थित मापन और कर-निर्धारण की एकरूप पद्धति का अभाव था।

इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बरनी के विवरणों से यह संकेत मिलता है कि उस समय शासन द्वारा राजस्व-संग्रह

की विभिन्न पद्धतियों पर प्रयोग किए जा रहे थे और राज्य कर-वसूली को नियंत्रित और व्यवस्थित करने का प्रयास कर रहा था।

मुग़ल साम्राज्य के समय, विशेषकर सम्राट अकबर (1556–1605) के शासनकाल में, भूमि-राजस्व प्रणाली को अधिक संगठित और व्यवस्थित रूप दिया गया। इस दौर में ज़ब्त प्रणाली लागू की गई, जिसके अंतर्गत कृषि भूमि का विस्तृत मापन किया गया, मिट्टी के प्रकारों का वर्गीकरण किया गया और दस वर्षों के औसत उत्पादन तथा क़ीमतों के आधार पर राज्य के हिस्से का निर्धारण किया गया।

अबुल फ़ज़्ल द्वारा रचित 'आईने-अकबरी' में इस पूरी व्यवस्था का विस्तृत विवरण मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि उस समय एक सुव्यवस्थित प्रशासनिक तंत्र विकसित किया गया था, जिसका उद्देश्य मनमाना कर-वसूली को कम करना और राजस्व-प्राप्ति को स्थिर बनाना था।

इतिहासकार इरफ़ान हबीब के अनुसार, यह व्यवस्था पूर्व-आधुनिक विश्व की सबसे उन्नत कृषि-प्रशासनिक व्यवस्थाओं में से एक थी। सामान्यतः राज्य की राजस्व-आवश्यकता कुल उत्पादन के लगभग एक-तिहाई तक होती थी। इससे राज्य की राजकोषीय क्षमता तो मज़बूत होती थी, लेकिन फ़सल ख़राब होने की स्थिति में कृषकों पर दबाव भी बढ़ जाता था। फिर भी, भूमि-राजस्व के इस व्यवस्थित आकलन ने कृषि को अधिक व्यावसायिक बनाने में भूमिका निभाई। इसके परिणामस्वरूप कपास और नील जैसी नक़दी फ़सलों की खेती बढ़ी और कृषि उत्पादन धीरे-धीरे बाज़ारोन्मुख होने लगा।

व्यापार और वाणिज्यिक

मुग़लकाल में आंतरिक व्यापार काफ़ी विकसित और सक्रिय था। देश के विभिन्न हिस्सों में फैले बाज़ारों, कारवां मार्गों और व्यापारी संघों (गिल्डों) के माध्यम से व्यापारिक गतिविधियां एक-दूसरे से जुड़ी हुई थीं। आगरा, लाहौर, अहमदाबाद, सूरत और बुरहानपुर जैसे प्रमुख नगर महत्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र के रूप में उभरे। ये शहर ग्रामीण क्षेत्रों से आने वाले कृषि उत्पादों को बड़े बाज़ारों और निर्यात व्यापार से जोड़ने का काम करते थे।

इतिहासकार के. एन. चौधरी ने हिंद महासागर के व्यापार पर अपने अध्ययन में बताया है कि भारतीय व्यापारी उस समय समुद्री व्यापारिक नेटवर्क का एक महत्वपूर्ण हिस्सा थे। उनके व्यापारिक संबंध लाल सागर, फ़ारस की खाड़ी, दक्षिण-पूर्व एशिया और पूर्वी अफ़्रीक़ा तक फैले हुए थे। इन अंतरराष्ट्रीय बाज़ारों में भारत से जाने वाले वस्त्र, विशेषकर सूती और रेशमी कपड़े, अत्यधिक लोकप्रिय थे और एशियाई बाज़ारों में उनका बड़ा हिस्सा था।

इतिहासकार ओम प्रकाश का मत है कि जब यूरोपीय व्यापारिक कंपनियां भारत में आईं, तो उन्होंने कोई नया व्यापारिक ढांचा नहीं बनाया, बल्कि पहले से मौजूद एक विकसित और संगठित व्यापारिक व्यवस्था में प्रवेश किया।

उस समय की आर्थिक व्यवस्था में वित्तीय परिपक्वता भी स्पष्ट दिखाई देती है। व्यापारिक लेन-देन में हुंडी (बिल ऑफ़ एक्सचेंज) का व्यापक उपयोग होता था। सर्राफ़ (मुद्रा-विनिमय करने वाले और वित्तीय सेवाएं देने वाले व्यापारी) धन के लेन-देन और ऋण उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। इसके साथ ही साझेदारी पर आधारित व्यापारिक प्रतिष्ठान भी विकसित थे।

इन संस्थाओं की सहायता से दूर-दराज़ के व्यापारिक लेन-देन बिना नक़दी या धातु (सोना-चांदी) को भौतिक रूप से ले जाए भी संभव हो जाते थे। इससे पूंजी का संचलन आसान हुआ और एक जटिल ऋण-आधारित आर्थिक व्यवस्था विकसित हुई, जो उस समय के अन्य प्रमुख व्यापारिक केंद्रों के समान ही उन्नत थी।

कुटीर उद्योग और उत्पादन

भारत का वस्त्र-उद्योग उस समय की निर्यात-आधारित अर्थव्यवस्था की रीढ़ था। बंगाल की मलमल और गुजरात के सूती वस्त्र अपनी उत्कृष्ट गुणवत्ता के कारण विश्वभर में प्रसिद्ध थे। इतिहासकार आशिन दास गुप्ता ने सूरत बंदरगाह के महत्व को विशेष रूप से रेखांकित किया है। उनके अनुसार सूरत वह प्रमुख केंद्र था, जो देश के आंतरिक क्षेत्रों में होने वाले उत्पादन को अंतरराष्ट्रीय व्यापारिक मार्गों से जोड़ता था।

उस समय अधिकांश कारीगरी कुटीर-आधारित और पारिवारिक ढांचे पर आधारित थी। कारीगर अपने घरों या छोटी कार्यशालाओं में काम करते थे, और उनका कौशल पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थानांतरित होता रहता था। इससे उत्पादन की परंपरा और तकनीकी दक्षता लंबे समय तक बनी रही।

वस्त्र उद्योग के अतिरिक्त कई अन्य उद्योग भी विकसित थे। इनमें धातुकर्म, कालीन-बुनाई, जहाज़-निर्माण, काग़ज़-निर्माण और रत्नों की कटाई-घिसाई जैसे क्षेत्र शामिल थे।

इतिहासकार मुज़फ़्फ़र आलम और संजय सुब्रह्मण्यम का मत है कि मुग़ल दरबार के संरक्षण ने विलासिता से जुड़ी कारीगरी और शिल्प को प्रोत्साहन दिया, जबकि व्यापक बाज़ार की मांग ने सामान्य उपभोग के लिए होने वाले बड़े पैमाने के उत्पादन को बनाए रखा।

यद्यपि उस समय उत्पादन मुख्यतः श्रम-आधारित (labor-intensive) था, फिर भी कारीगरों की दक्षता बहुत उच्च स्तर की थी। इसी कारण भारत अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक वैश्विक वस्त्र-व्यापार में अपनी प्रतिस्पर्धात्मक बढ़त बनाए रखने में सफल रहा।

मुद्रा और मौद्रिक स्थिरता

मुद्रा-प्रणाली का नियमन उस समय की एक महत्त्वपूर्ण संस्थागत उपलब्धि थी। चांदी का रुपया, जिसे शेरशाह सूरी के शासन में प्रारम्भ किया गया और बाद में मुग़ल प्रशासन ने और अधिक व्यवस्थित रूप दिया, शुद्ध धातु और समान वज़न के लिए प्रसिद्ध था। इस स्थिरता ने बाज़ार में भरोसा बढ़ाया और अंतरराष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से भारत में चांदी के प्रवाह को प्रोत्साहित किया।

इतिहासकार इरफ़ान हबीब का मत है कि मुग़ल मुद्रा-प्रणाली ने कर-संग्रह, मज़दूरी के भुगतान और दूर-दराज़ के व्यापार को सुचारु बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वैश्विक व्यापार के कारण नई दुनिया (अमेरिका) से आने वाली चांदी भी भारत में पहुंची, जिससे मुद्रा-आपूर्ति में वृद्धि हुई।

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि चांदी की इस बढ़ती मात्रा के बावजूद तत्कालीन भारत में क़ीमतों में अस्थिरता बहुत अधिक नहीं बढ़ी। इससे संकेत मिलता है कि उस समय की मौद्रिक व्यवस्था अपेक्षाकृत स्थिर थी, और कई मामलों में समकालीन यूरोप के कुछ क्षेत्रों की तुलना में अधिक संतुलित और व्यवस्थित मानी जा सकती है।

आधारभूत संरचना और सिंचाई

आर्थिक विस्तार में आधारभूत संरचना के विकास की महत्वपूर्ण भूमिका थी। ग्रैंड ट्रंक रोड, जिसे शेरशाह सूरी के समय विस्तारित किया गया और बाद में मुग़ल शासकों ने भी बनाए रखा, पूर्वी बंगाल को उत्तर-पश्चिमी भारत से जोड़ती थी। इस सड़क ने परिवहन की लागत कम की और लोगों तथा व्यापारिक वस्तुओं के आवागमन को अधिक सुगम बनाया।

यात्रियों और व्यापारियों की सुविधा के लिए मार्गों के किनारे सराय, पुल और विश्राम-स्थल बनाए गए। इन व्यवस्थाओं से न केवल यात्रा सुरक्षित हुई, बल्कि प्रशासनिक संचार और व्यापारिक गतिविधियां भी अधिक सुचारु हो गईं।

कृषि उत्पादकता का बड़ा आधार सिंचाई व्यवस्था थी। इसके लिए कुओं, नहरों और नदियों पर आधारित जल-वितरण प्रणालियों का उपयोग किया जाता था। दोआब और पंजाब जैसे क्षेत्रों में नहरों के निर्माण और जल-प्रबंधन से खेती को विशेष लाभ मिला, जिससे अधिक गहन और उत्पादक कृषि संभव हुई।

इन आधारभूत निवेशों के परिणामस्वरूप कृषि-अधिशेष (Agricultural Surplus) में वृद्धि हुई, नगरों का विकास हुआ और राज्य की राजस्व-व्यवस्था को भी स्थिरता मिली।

स्वास्थ्य-व्यवस्था और सामाजिक कल्याण

उस समय की स्वास्थ्य-व्यवस्था विविध रूप और विकेन्द्रित स्वरूप की थी। शाही संरक्षण में चलने वाले दवाख़ानों या संस्थानों में मुख्यतः यूनानी चिकित्सा-पद्धति का अभ्यास होता था, जिसकी जड़ें यूनानी-इस्लामी चिकित्सकीय परंपरा में थीं। दूसरी ओर, व्यापक जनसमुदाय के बीच आयुर्वेद भी समान रूप से प्रचलित रहा।

विद्वान हकीम सैयद ज़िल्लुर्रहमान ने अपने शोध में बताया है कि मुग़लकाल के शहरी केंद्रों में यूनानी चिकित्सा का संस्थागत रूप विकसित हो चुका था। वहीं इतिहासकार डॉमिनिक वुजास्तिक ने आयुर्वेदिक परंपराओं की निरंतरता और उनके व्यापक सामाजिक उपयोग की ओर ध्यान आकर्षित किया है।

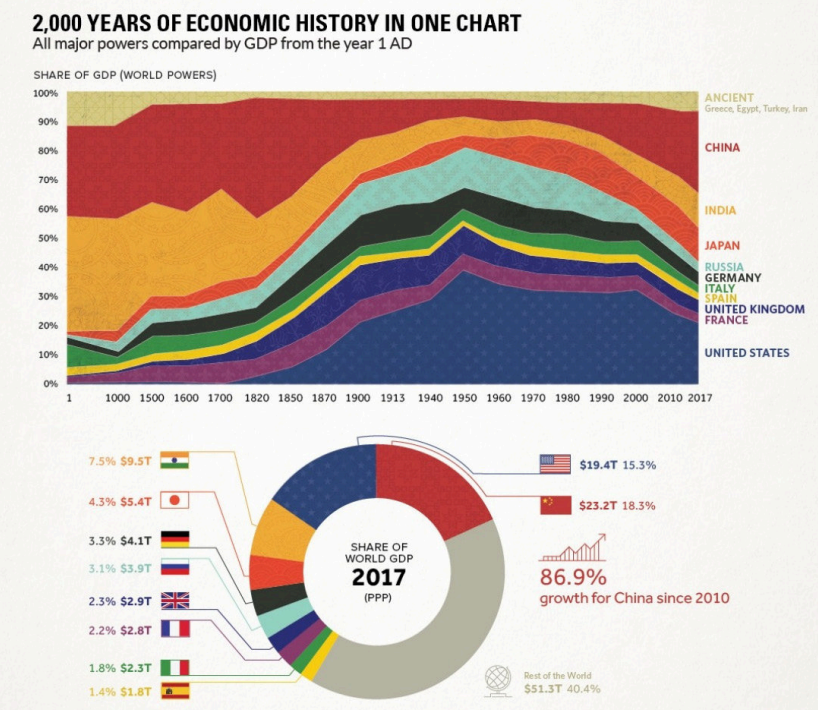
औपचारिक रूप से राज्य द्वारा संचालित व्यापक कल्याण-प्रणालियां सीमित थीं, फिर भी समाज में कई प्रकार की धार्मिक और सामुदायिक सहायता-व्यवस्थाएं मौजूद थीं। वक़्फ़, ज़कात और अन्य परोपकारी संस्थाओं के माध्यम से स्थानीय स्तर पर लोगों की सहायता की जाती थी। कई धार्मिक संस्थान कुओं के निर्माण, भोजन-वितरण और आश्रय-स्थलों के संचालन जैसे कार्यों में योगदान देते थे।

इसके बावजूद, अकाल या राजनीतिक अस्थिरता के समय कृषकों और श्रमिक वर्ग की स्थिति अक्सर संकटपूर्ण हो जाती थी, जिससे उनकी असुरक्षा और अधिक स्पष्ट रूप से सामने आती थी।

असमानता और जीवन-स्तर

यूरोपीय यात्रियों, विशेषकर फ्रांस्वा बर्नियर, ने अपने

विवरणों में मुग़ल अभिजात वर्ग के हाथों में संपत्ति के अधिक संकेंद्रण और किसानों के अपेक्षाकृत अस्थिर जीवन की चर्चा की है। इतिहासकार इरफ़ान हबीब के कृषि संबंधी अध्ययन भी यह संकेत देते हैं कि उस समय समाज में संरचनात्मक असमानताएं मौजूद थीं, जो विशेष रूप से फ़सल ख़राब होने या अकाल के समय अधिक स्पष्ट हो जाती थीं।



हालांकि स्थिति सभी वर्गों के लिए एक जैसी नहीं थी। कुशल कारीगरों और व्यापारियों को अपेक्षाकृत स्थिर समृद्धि और आय प्राप्त थी, जबकि भूमिहीन मज़दूरों और छोटे किसानों को समय-समय पर आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था।

इन असमानताओं के बावजूद, उस समय के प्रमुख नगरों में उपभोग का स्तर काफ़ी ऊंचा दिखाई देता है। भव्य स्थापत्य निर्माण, दरबारी संरक्षण और सक्रिय व्यापारिक गतिविधियां शहरी जीवन की समृद्धि और जीवंतता को दर्शाती हैं।

इस प्रकार, आर्थिक उत्पादकता और सामाजिक असमानता साथ-साथ मौजूद थीं, जो पूर्व-आधुनिक कृषि-आधारित साम्राज्यों की एक सामान्य और स्थायी विशेषता मानी जाती है।

निष्कर्ष

दिल्ली सल्तनत और मुग़ल साम्राज्य के आर्थिक इतिहास का अध्ययन यह दर्शाता है कि उस समय भारत की अर्थव्यवस्था जटिल होने के साथ-साथ अत्यंत उत्पादक भी थी। यह व्यवस्था संगठित प्रशासनिक ढांचे, वैश्विक व्यापार से जुड़ाव, उत्कृष्ट कारीगरी और अपेक्षाकृत स्थिर मुद्रा-प्रणाली जैसी विशेषताओं से परिपूर्ण थी।

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में वैश्विक सकल उत्पादन में भारत की बड़ी हिस्सेदारी इस तथ्य को रेखांकित करती है कि उस समय विश्व अर्थव्यवस्था में भारत का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण था।

यद्यपि समाज में आर्थिक असमानताएं मौजूद थीं और पर्यावरणीय संकटों, जैसे सूखा या अकाल के कारण अर्थव्यवस्था कभी-कभी अस्थिर भी हो जाती थी, फिर भी इस काल में विकसित संस्थागत व्यवस्थाओं ने आगे चलकर औपनिवेशिक शासन की राजस्व-नीतियों और क्षेत्रीय आर्थिक संरचनाओं को प्रभावित किया। मज़बूत कृषि-व्यवस्था और विकसित व्यापारिक नेटवर्क तत्कालीन भारत कि आर्थिक संरचना के प्रमुख आधार थे। ■■

संदर्भ :

इरफ़ान हबीब, The Agrarian System of Mughal India (1556–1707), Oxford University Press; तपन रायचौधुरी एवं इरफ़ान हबीब (eds.), The Cambridge Economic History of India, Vol. I; शिरीन मूसवी, The Economy of the Mughal Empire; एंगस मैडिसन, The World Economy: A Millennial Perspective; के. एन. चौधुरी, Trade and Civilization in the Indian Ocean; ओम प्रकाश, European Commercial Enterprise in Pre-Colonial India; आशिन दास गुप्ता, Indian Merchants and the Decline of Surat; सतीश चंद्र, Medieval India: From Sultanat to the Mughals; मुज़फ़्फ़र आलम एवं संजय सुब्रह्मण्यम, The Mughal State, 1526–1750; बर्टन स्टीन, A History of India; फ्रांस्वा बर्नियर, Travels in the Mughal Empire; जां-बप्तिस्त तावर्नियर, Travels in India.

झरोखा

उत्तराखंड में मुसलमान : भाग–1

(उत्तराखंड में हाल के वर्षों में सांप्रदायिक तनाव और बाहरी-भीतरी की बहस ने एक नया रूप ले लिया है। विशेष रूप से कश्मीरी शाल बेचने वाले व्यापारियों के साथ होने वाली मारपीट और उन्हें संदेह की दृष्टि से देखे जाने की घटनाएं इस बात का संकेत हैं कि इतिहास और सामाजिक वास्तविकताओं से अनभिज्ञ एक संकीर्ण मानसिकता समाज में फैल रही है। ऐसे समय में यह याद दिलाना आवश्यक हो जाता है कि हिमालयी क्षेत्र—कश्मीर, हिमाचल, उत्तराखंड और नेपाल, सदियों से व्यापार, संस्कृति और मानवीय संपर्क के साझा मार्ग रहे हैं। कश्मीरी मुसलमानों का इन पहाड़ी इलाक़ों से संबंध कोई नया या आकस्मिक नहीं, बल्कि लगभग छह–सात सौ वर्षों की ऐतिहासिक परंपरा का हिस्सा है। प्रस्तुत लेख इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को सामने रखकर यह समझाने का प्रयास करता है कि उत्तराखंड में मुसलमानों की मौजूदगी को वर्तमान की राजनीति से नहीं, बल्कि लंबे ऐतिहासिक और आर्थिक संबंधों की रोशनी में देखा जाना चाहिए। "उत्तराखंड में मुसलमान कब और कैसे आए" इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझाने के लिए चार क़िस्तों में प्रकाशित होने जा रही लेख श्रृंखला की यह पहली कड़ी है।) –संपादक

❖इस्लाम हुसैन

उत्तराखंड में मुसलमान कैसे और कब आए? यह सवाल बार-बार उठता है। जो लोग यह सवाल उठाते हैं, उन्हें न तो सामाजिक, आर्थिक और भौगोलिक परिस्थितियों का ज्ञान होता है और न ही राजनीतिक परिदृश्य और आवश्यकताओं का।

राजनीतिक कारणों और परिस्थितियों के अलावा भी कई कारण होते हैं, जिनकी वजह से कोई समुदाय या वर्ग दूसरे इलाक़ों में पलायन करता है। लोग अक्सर केवल वर्तमान की बात करते हैं, जबकि उसका ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य सैकड़ों वर्षों का होता है।

ऐतिहासिक साक्ष्य बताते हैं कि उत्तराखंड में मुसलमान या तो सूफ़ियों के प्रभाव से आए या फिर व्यापार के उद्देश्य से। इसी से जुड़े विभिन्न व्यावसायों के कारीगर और तकनीकी दक्ष मुस्लिम भी यहां आकर बस गए।

उत्तराखंड और हिमाचल का शायद ही कोई ऐसा मोहल्ला होगा जहां कश्मीरी शाल बेचने वाले न जाते हों। उनका व्यापार के लिए आना एक ऐतिहासिक सच्चाई का उदाहरण है।

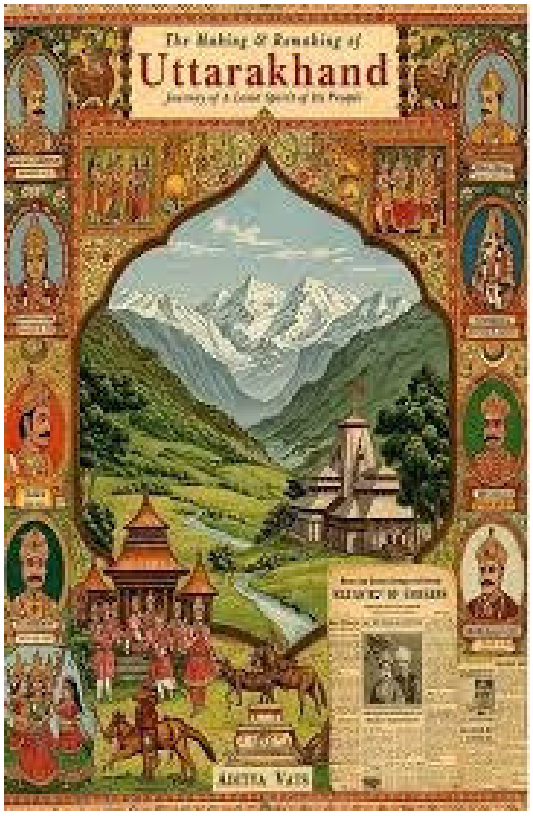
हालांकि पिछले कुछ वर्षों से नफ़रत फैलाने वाली ताक़तें इन कश्मीरी शाल बेचने वालों के साथ मारपीट कर रही हैं। हालिया समय में ऐसी 25 से अधिक घटनाएं सामने आ चुकी हैं। ये दक्षिणपंथी तत्व यह नहीं जानते कि कश्मीरी व्यापारियों का हिमाचल, उत्तराखंड और नेपाल से संबंध चौदहवीं सदी से है, जिसे छह–सात सौ वर्ष हो चुके हैं।

भारत में अरब व्यापारी सदियों से आते रहे हैं। सातवीं सदी के पूर्वार्द्ध में इस्लाम के प्रसार के बाद मुसलमान व्यापार के लिए भारत, दक्षिण एशिया और दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों तक पहुंचे। हालांकि इस्लाम के उदय से पहले भी (सातवीं सदी के शुरुआती दौर से पहले) लोग एक-दूसरे के इलाक़ों में आते-जाते थे। उस समय व्यापार के दो प्रमुख मार्ग थे।

पहला मार्ग मलक्का से चीन, मध्य एशिया होते हुए स्पेन और उत्तर-पूर्वी अफ़्रीक़ा तक फैले ज़मीनी रेशम मार्ग का

था। दूसरा मार्ग अदन से भारत, श्रीलंका होते हुए बर्मा और ब्रूनेई तक फैले समुद्री व्यापार मार्ग का था।

पश्चिम में सिंधु नदी से लेकर पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी तक लगभग ढाई हज़ार किलोमीटर में फैले हिमालय को 'ग्रेट हिमालय' भी कहा जाता है। यह उत्तर में ट्रांस-हिमालय (तिब्बती हिमालय), ज़ांस्कर और काराकोरम क्षेत्र से जुड़ा है, जबकि दक्षिण में लगभग 500 किलोमीटर चौड़ी बाहरी हिमालय की शिवालिक पर्वतमाला से मिलता है। अतीत में इस पूरे क्षेत्र में अनेक छोटे-छोटे राज्य हुआ करते थे, जिनके बीच आपसी व्यापार और हिमालय के आर-पार के देशों से संपर्क बना रहता था।



रेशम मार्ग हिमाचल और काराकोरम के पार से गुज़रता था, जहां से दक्षिण एशिया से जुड़ने के कई रास्ते निकलते थे। ये रास्ते तिब्बत और हिमालय पार करके कारगिल, कश्मीर, हिमाचल, उत्तराखंड और नेपाल से लेकर सिक्किम, भूटान और अरुणाचल तक पहुंचते थे। इन्हीं मार्गों से व्यापार होता था।

ऐतिहासिक रूप से यह ज्ञात है कि इन्हीं रास्तों से कश्मीर, हिमाचल, तिब्बत, उत्तराखंड और नेपाल के पहाड़ी राज्यों के बीच सैकड़ों वर्षों से व्यापार होता रहा है। इसका उल्लेख 'राजतरंगिणी' से लेकर फ़ारसी दस्तावेज़ों तक में मिलता है। कश्मीर से पश्मीना, केसर और मेवों का व्यापार हिमालयी राज्यों में होता था, जबकि तिब्बत से भेड़ों की ऊन और अन्य क्षेत्रों से गुड़, नमक आदि का आदान-प्रदान किया जाता था।

हिमालय की कठिन भौगोलिक स्थिति कभी भी राज्यों के आपसी संबंधों में बाधा नहीं बनी। इसके दुर्गम पहाड़ी रास्ते सदियों से व्यापार, संस्कृति और धर्मों के आदान-प्रदान के माध्यम रहे हैं।

चौदहवीं शताब्दी में कश्मीर में मुस्लिम सत्ता की स्थापना के बाद व्यापार और अधिक बढ़ा। विशेषकर शाह मीर (1339 ई.) के बाद कश्मीरी व्यापारी मध्य एशिया, तिब्बत और उत्तर भारत के विभिन्न राज्यों के विस्तृत व्यापारिक नेटवर्क से जुड़ गए। इनमें आज के हिमाचल और उत्तराखंड के इलाक़े भी शामिल थे।

उसी दौर में चंबा, पालमपुर, नूरपुर और कांगड़ा से लेकर गढ़वाल, कुमाऊं और नेपाल तक आपसी व्यापारिक संबंधों की नींव पड़ी। इसका एक ठोस प्रमाण काठमांडू की प्रसिद्ध 'कश्मीर तकिया मस्जिद' है, जिसका निर्माण किसी मुस्लिम शासक ने नहीं, बल्कि 16वीं शताब्दी (लगभग 1524 ई.) में कश्मीरी व्यापारियों ने कराया था।

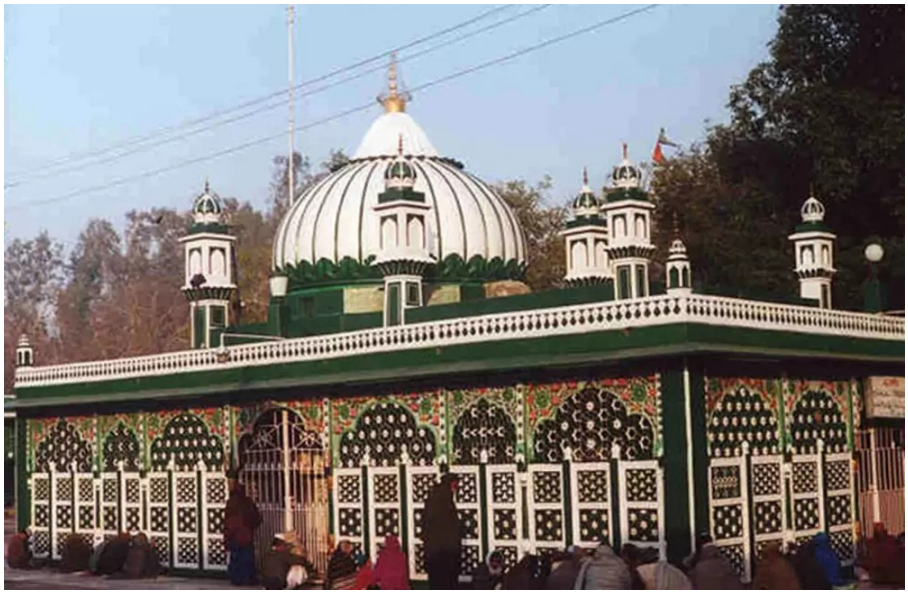
उस समय की राजनीतिक परिस्थितियों और व्यापारिक विस्तार ने इन संबंधों को और मज़बूत किया। चौदहवीं सदी में शाह मीर वंश की स्थापना के बाद कश्मीर मध्य एशिया और उत्तर भारत के बीच एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र बन गया। पंद्रहवीं सदी में सुल्तान ज़ैनुल-आबिदीन (बडशाह) के शासनकाल में कश्मीरी कारीगरी, काग़ज़, केसर, मेवों और पश्मीना शॉलों की ख्याति दूर-दूर तक फैल चुकी थी।

उधर दिल्ली में फ़िरोज़ शाह तुग़लक़ के शासनकाल में सड़कों, सरायों और नहरों का विकास हुआ, जिससे लंबी दूरी का व्यापार अपेक्षाकृत सुरक्षित और सुगम हुआ। यही वह सामाजिक-राजनीतिक स्थिरता का माहौल था, जिसकी वजह से कश्मीर से नेपाल तक ज़मीनी व्यापार संभव हो सका।

कश्मीर से निकलने वाले व्यापारिक क़ाफ़िले पहाड़ी और मैदानी दोनों मार्गों से चलते थे। पहाड़ी मार्ग कश्मीर से चंबा, कांगड़ा, गढ़वाल और कुमाऊं होते हुए काली नदी पार कर पश्चिमी नेपाल तक जाता था। हालांकि यह मार्ग कठिन

था, फिर भी ऊनी कपड़ों, केसर, नमक और बर्तनों का व्यापार इसी से होता था।

दूसरा मार्ग मैदानी था, जो श्रीनगर से बनिहाल दर्रा पार करके जम्मू, सरहिंद, पंजाब, दिल्ली, अवध, गोरखपुर और तराई होते हुए काठमांडू तक जाता था। यह लगभग 1000 मील लंबा था, पर अपेक्षाकृत सुरक्षित और नियमित मार्ग माना जाता था।



इसके अलावा हिमालय के आर-पार एक उत्तरी मार्ग भी था, जो कश्मीर, लद्दाख़ और तिब्बत से होकर हिमाचल, गढ़वाल, कुमाऊं और नेपाल तक जाता था। इस मार्ग से शॉल, ऊन, नमक और घोड़ों का व्यापार होता था।

इन्हीं मार्गों से पश्मीना शॉल, ऊनी कपड़े, केसर, सूखे मेवे, काग़ज़, किताबें, रत्न, बर्तन, हथियार, जड़ी-बूटियां, तिब्बती नमक, ऊन और धातु आदि का व्यापार होता था।

हिमालयी व्यापार-इतिहास के स्रोतों, गजेटियरों और यात्रावृत्तांतों से संकेत मिलता है कि कश्मीरी व्यापारी पश्मीना, केसर और सूखे मेवे लेकर चंबा होते हुए गढ़वाल की राजधानी श्रीनगर (और बाद में टिहरी) तक आते थे।

इस प्रकार कश्मीरी मुसलमानों का व्यापार सदियों तक चलता रहा। यद्यपि वे हिमाचल, उत्तराखंड और नेपाल में बड़ी संख्या में नहीं बसे, फिर भी उनकी कुछ बस्तियां इन क्षेत्रों में मौजूद हैं। उत्तराखंड में कालसी, विकासनगर, मसूरी, नैनीताल और रानीखेत आदि स्थानों पर कश्मीर, गिलगित और कारगिल से आए मुस्लिम परिवार स्थानीय समाज में घुल-मिल गए हैं।

काठमांडू में कश्मीरी मुसलमानों द्वारा निर्मित 'तकिया मस्जिद' आज भी 500 से अधिक वर्ष पुरानी ऐतिहासिक विरासत के रूप में मौजूद है। 16वीं सदी में मल्ल राजाओं के अधीन काठमांडू घाटी एक समृद्ध व्यापारिक केंद्र थी, जहां विदेशी व्यापारियों को संरक्षण मिलता था।

शुरुआत में कश्मीरी व्यापारी मौसमी काफ़िलों के रूप में आते थे, लेकिन धीरे-धीरे उनमें से कई वहीं स्थायी रूप से बस गए। 'कश्मीर तकिया मस्जिद' केवल धार्मिक स्थल नहीं थी, बल्कि सराय, सामुदायिक केंद्र और व्यापारिक बैठक-स्थल के रूप में भी काम करती थी। आज भी काठमांडू में "कश्मीरी" कहलाने वाले मुस्लिम परिवार अपनी वंशावली कश्मीर से जोड़ते हैं। (जारी...)

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार तथा मूल रूप से उत्तराखंड के निवासी हैं)

संदर्भ :

1. Mohibbul Hasan, Kashmir under the Sultans, Delhi: Aakar Books (reprint).
2. Walter R. Lawrence, The Valley of Kashmir, London, 1895 (कश्मीरी उद्योग और निर्यात का विवरण).
3. Gazetteer of the Chamba State, Punjab Government Press, 1904.
4. E.T. Atkinson (ed.), The Himalayan Gazetteer, Vol. III (Garhwal), Allahabad, 1882.
5. बद्रीदत्त पांडे, कुमाऊं का इतिहास, (प्रासंगिक अध्याय: हिमालयी व्यापार-संपर्क).
6. H.G. Walton, Gazetteer of the Garhwal District, 1910.
7. William Moorcroft & George Trebeck, Travels in the Himalayan Provinces of Hindustan and the Punjab, 1841.
8. Rahul Sankrityayan, Tibet Mein Sava Varsh (हिमालयी व्यापार और क़ाफ़िला-मार्गों के उल्लेख).

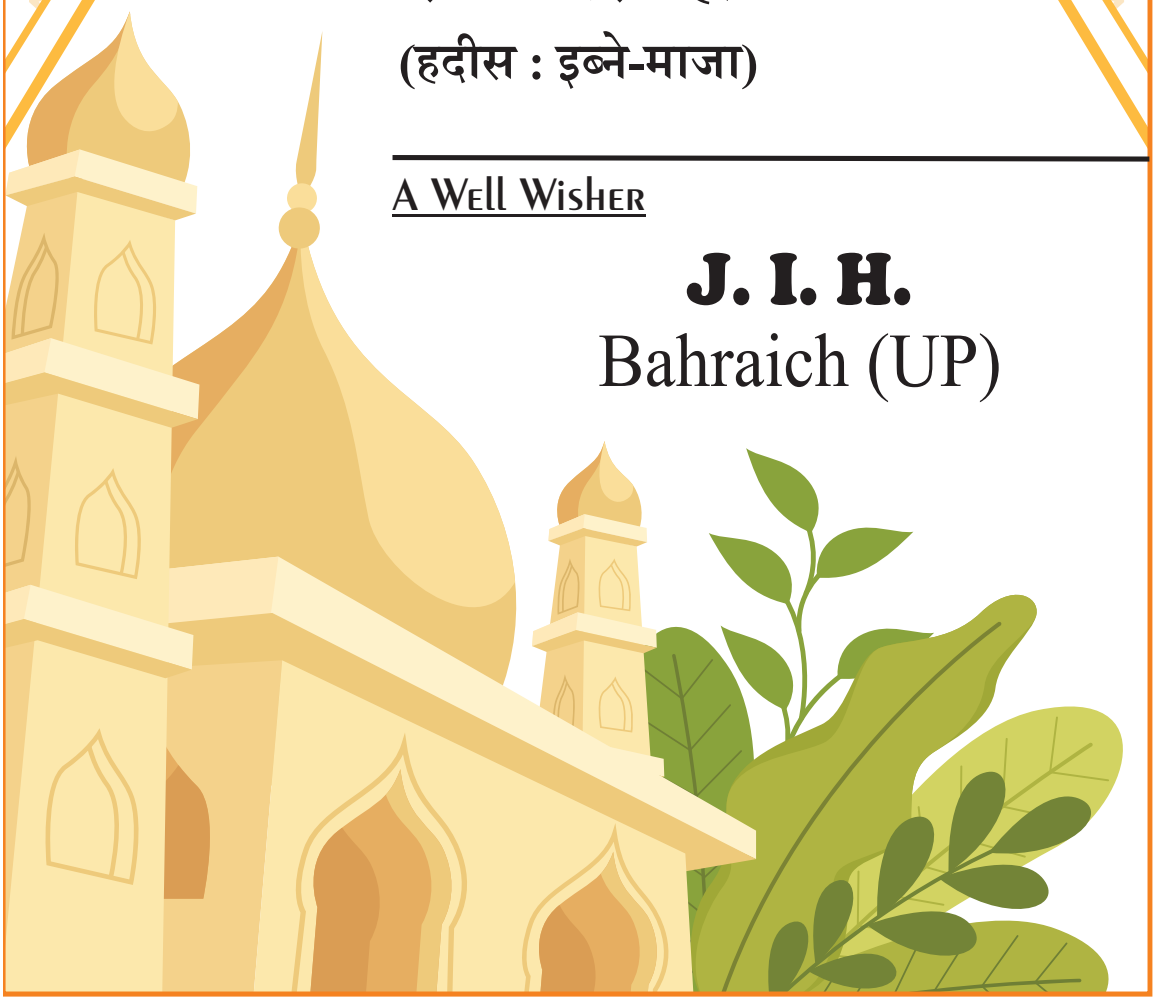
हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि.) से उल्लिखित है कि अल्लाह के रसूल (सल्ल.) ने कहा : हर चीज़ की ज़कात होती है और शरीर की ज़कात रोज़ा है।

(हदीस : इब्ने-माजा)

A Well Wisher

J. I. H.

Bahraich (UP)



समाधान



❖एम. शकील शम्सी

कहा जाता है कि इतिहास अतीत की घटनाओं का वह व्यवस्थित अध्ययन है जो प्रमाणों के आधार पर किया जाता है, ताकि समय के साथ मानव समाज के विकास को समझा जा सके। प्रसिद्ध इतिहासकार और दार्शनिक आर्नोल्ड जे. टॉयनबी (1889–1975) इतिहास को सभ्यताओं तथा उनके उत्थान और पतन के अध्ययन के रूप में परिभाषित करते हैं। लेकिन ये परिभाषाएं कुछ हद तक अधूरी प्रतीत होती हैं। इतिहास की सबसे व्यापक और समग्र परिभाषा इब्ने-ख़ुल्दून (1334–1406) ने दी है, जिन्हें इतिहास-दर्शन का अग्रदूत और इतिहास-लेखन का जनक माना जाता है। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध कृति, जिसे सामान्यतः "मुक़द्दमा-ए-इब्ने-ख़ुल्दून" कहा जाता है, में इतिहास को मानव सभ्यता का अभिलेख बताया है। इसमें मानव सभ्यता की प्रकृति में आने वाले परिवर्तनों का वर्णन, घटनाओं का विवरण, उनके कारण और परिणामों का विश्लेषण, राष्ट्रों के उत्थान और पतन का उल्लेख तथा भौगोलिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय कारकों का अध्ययन शामिल है।

इसके अलावा ईश्वरीय ग्रंथ क़ुरआन भी इतिहास को प्रस्तुत करता है। हालांकि, इतिहास प्रस्तुत करने की क़ुरआन की शैली कुछ भिन्न है। चूंकि क़ुरआन मार्गदर्शन की पुस्तक है, इसलिए वह इतिहास प्रस्तुत करते समय सामान्य जीवनीपरक कथन-शैली से बचता है। वह ऐतिहासिक घटनाओं को मानवता के लिए मार्गदर्शन और शिक्षा के रूप में प्रस्तुत करता है। पवित्र क़ुरआन में पच्चीस नबियों के प्रामाणिक ऐतिहासिक उल्लेख मिलते हैं। किंतु हज़रत यूसुफ़ (अलैहिस्सलाम) को छोड़कर किसी भी नबी का पूरा जीवन-वृत्तांत एक ही स्थान पर नहीं दिया गया है; बल्कि उनके जीवन की घटनाएं अलग-अलग प्रसंगों में विभिन्न स्थानों पर आती हैं।

क़ुरआन जब किसी विषय का उल्लेख करता है, तो उसे प्रमाणित करने के लिए किसी नबी के जीवन की संबंधित घटना का हवाला देता है। उदाहरण के लिए, हज़रत नूह (अलैहिस्सलाम) का उल्लेख क़ुरआन की विभिन्न सूरतों में कम से कम 43 स्थानों पर मिलता है। लेकिन यह किसी प्रकार की निरर्थक पुनरावृत्ति नहीं है। इस शैली पर थोड़ा विचार करने से स्पष्ट होता है कि हर स्थान पर क़ुरआन उस घटना को एक नए दृष्टिकोण और एक नई शिक्षा के साथ प्रस्तुत करता है। हज़रत मूसा और फ़िरऔन की कथा क़ुरआन की 34 विभिन्न सूरतों में बयान की गई है, लेकिन हर जगह यह अलग दृष्टिकोण और अलग उद्देश्य के साथ प्रस्तुत होती है। उदाहरण के लिए, सूरा क़सस (28) में हज़रत मूसा की कहानी मक्का के मुशरिकों के अहंकार की पृष्ठभूमि में सुनाई गई है। वे लोग हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) द्वारा शुरू किए गए

सत्य के आंदोलन को कमज़ोर करना चाहते थे, ताकि वे अपनी बुरी आदतों—धरती में फ़साद फैलाने और शरारत करने—को जारी रख सकें। उन्होंने जान-बूझकर नबी मुहम्मद (सल्ल०) की पैग़म्बरी पर संदेह पैदा करने की कोशिश की। इसी पृष्ठभूमि में यह कथा फ़िरऔन के घमंड का उल्लेख करते हुए शुरू होती है–

"निश्चय ही फ़िरऔन ने धरती में घमंड किया और वहां के लोगों को अलग-अलग वर्गों में बांट दिया। वह उनमें से एक समूह को कमज़ोर बनाता था, उनके बेटों को क़त्ल करता था और उनकी बेटियों को जीवित छोड़ देता था। वास्तव में वह फ़साद फैलाने वालों में से था।" (क़ुरआन, 28:4)

इस सूरा में बयान की गई हज़रत मूसा की कहानी यह दिखाती है कि अल्लाह की गुप्त योजना किस तरह चुपचाप काम करती है। कहानी आगे बढ़ते हुए हज़रत मूसा के जीवन के एक हिस्से की पूरी रूप-रेखा बताती है—उनके जन्म से लेकर इस बात तक कि उन्हें क़त्ल होने से कैसे बचाया गया, फिर कैसे वे स्वयं फ़िरऔन के ही घर में पले-बढ़े, और अंततः कैसे एक अकेले व्यक्ति ने फ़िरऔन की ज़ालिम सत्ता के सामने डटकर खड़े होकर उसे चुनौती दी। आख़िरकार फ़िरऔन और उसका साम्राज्य नष्ट हो गया।

कहानी के अंत में कहा गया है–

"फ़िरऔन और उसके लोगों ने धरती में नाहक़ घमंड किया और समझ बैठे कि उन्हें हमारी ओर लौटकर नहीं आना होगा। इसलिए हमने उसे और उसके लश्कर को पकड़ लिया और समुद्र में फेंक दिया। देखो, ज़ालिमों का क्या अंजाम हुआ।" (क़ुरआन, 28:39-40)

दूसरी ओर, हज़रत मूसा की यही कहानी सूरा शुअरा (26) में भी बयान की गई है, लेकिन एक बिल्कुल अलग पहलू से। मक्का के मुशरिक बार-बार यह मांग करते थे कि कोई स्पष्ट निशानी दिखाई जाए, ताकि वे नबी मुहम्मद (सल्ल०) को अल्लाह का रसूल मान लें। इस संदर्भ में क़ुरआन पहले पूरी प्रकृति में फैली अल्लाह की निशानियों की ओर ध्यान दिलाता है–

"क्या वे धरती को नहीं देखते कि हमने उसमें कितनी ही लाभदायक चीज़ें उगाई हैं? निश्चय ही इसमें एक निशानी है…" (क़ुरआन, 26:7-8)

इसके बाद फ़िरऔन की मांग पर हज़रत मूसा ने अपनी लाठी डाल दी, जो सबके सामने एक चलता हुआ सांप बन गई। फिर उन्होंने अपना हाथ निकाला, जो देखने वालों को चमकता हुआ सफेद दिखाई दिया। लेकिन ये स्पष्ट निशानियां भी फ़िरऔन को विश्वास दिला न सकीं। उसने प्रतिक्रिया देते हुए कहा–

"निश्चय ही यह आदमी बड़ा कुशल जादूगर है, जो अपने जादू से तुम्हें तुम्हारी भूमि से निकालना चाहता है।"

(क़ुरआन, 26:34)

फिर कहानी आगे बताती है कि कैसे हज़रत मूसा ने पूरे जनसमूह के सामने राज्य के सबसे कुशल जादूगरों को पराजित कर दिया। जादूगरों ने जब यह स्पष्ट निशानी देखी, तो वे ईमान ले आए और कहने लगे–

"हम संसारों के पालनहार पर ईमान लाए—जो मूसा और हारून का पालनहार है।" (क़ुरआन, 26:47-48)

लेकिन फ़िरऔन ने ईमान नहीं लाया, क्योंकि उसने हठपूर्वक इन्कार करने का निश्चय कर लिया था। अंततः फ़िरऔन डूबकर नष्ट हो गया।

कहानी के अंत में क़ुरआन कहता है–

"निश्चय ही इसमें एक बड़ी निशानी है, लेकिन उनमें से अधिकांश लोग ईमान नहीं लाते।" (क़ुरआन, 26:67)

यह कथा मक्का के मुशरिकों को स्पष्ट संदेश देती है कि जब कोई व्यक्ति विश्वास न करने का निर्णय कर लेता है, तो कोई भी निशानी उसे ईमान लाने पर मजबूर नहीं कर सकती। लेकिन जो लोग सत्य को स्वीकार करना चाहते हैं, उनके लिए धरती और आकाश में अल्लाह की स्पष्ट निशानियां मौजूद हैं।

दूसरी ओर, नबी मुहम्मद (सल्ल०) को यह संदेश दिया गया कि अगर वे लोग ईमान न लाएं तो आप दुखी न हों, क्योंकि वे ईमान लाने वाले नहीं हैं, चाहे आप उन्हें कितनी ही स्पष्ट निशानियां क्यों न दिखाएं। (क़ुरआन, 26:3)

जैसा कि पिछले पैराग्राफ़ में बताया गया है, हज़रत यूसुफ़ (अलैहिस्सलाम) का मामला एक अपवाद है, क्योंकि उनकी पूरी कहानी क़ुरआन में एक ही जगह—यानी सूरा यूसुफ़ (12)—में बयान की गई है। यदि हम इस सूरा के अवतरण की पृष्ठभूमि पर नज़र डालें, तो पता चलता है कि यह मक्की दौर के अंतिम चरण में उतरी थी, जब मुसलमानों पर अत्याचार अपने चरम पर था। यहां तक कि विरोधी लोग नबी मुहम्मद (सल्ल०) को क़त्ल करने या देश निकाला देने की साज़िशें भी कर रहे थे।

नबी मुहम्मद (सल्ल०) के क़बीले और रिश्तेदारों के लोग भी इस सत्य के आंदोलन को किसी भी तरह रोक देने के लिए पूरा ज़ोर लगा रहे थे। ऐसे कठिन हालात में अल्लाह ने हज़रत यूसुफ़ की कहानी नाज़िल की, जो अप्रत्यक्ष रूप से यह भविष्यवाणी करती थी कि अंततः सत्य को ही विजय मिलेगी और धरती की कोई भी शक्ति उसे पराजित नहीं कर सकती, चाहे वह बाहरी रूप से कितनी ही कमज़ोर क्यों न दिखाई दे।

यदि हम नबी मुहम्मद (सल्ल०) के जीवन-क्रम की तुलना हज़रत यूसुफ़ (अलैहिस्सलाम) के जीवन से करें, तो आश्चर्यजनक समानताएं दिखाई देती हैं–

• जिस तरह हज़रत यूसुफ़ के ख़िलाफ़ उनके अपने भाइयों ने षड्यंत्र रचा था, उसी तरह नबी मुहम्मद (सल्ल०) के विरुद्ध भी उनके अपने क़बीले और रिश्तेदारों ने हत्या की साज़िश रची। लेकिन अंततः दोनों ही अपने गौरव के शिखर तक पहुंचे।

• फ़त्ह-ए-मक्का के समय वे लोग, जिन्होंने षड्यंत्र रचे थे, हाथ बांधे खड़े होकर क्षमा की याचना कर रहे थे—ठीक उसी तरह जैसे हज़रत यूसुफ़ के सौतेले भाई उनके सामने खड़े हुए थे।

• नबी मुहम्मद (सल्ल०) ने सभी अपराधियों को सामान्य क्षमादान दे दिया और वही वाक्य कहा जो हज़रत यूसुफ़ ने अपने भाइयों को क्षमा करते समय कहा था–

"आज तुम पर कोई इल्ज़ाम नहीं, अल्लाह तुम्हें माफ़ करे; और वह सबसे बढ़कर दया करने वाला है।"

(क़ुरआन, 12:92)

इस कहानी के अंत में क़ुरआन कहता है–

"निश्चय ही उनकी कथाओं में समझ रखने वालों के लिए शिक्षा है…" (क़ुरआन, 12:111)

इस कहानी से मिलने वाला अनिवार्य सबक़ यह है कि निर्मल चरित्र और सच्चाई अंततः सफलता प्राप्त करते हैं, चाहे वे प्रारंभ में कितने ही कमज़ोर क्यों न दिखाई दें। और बुरी शक्तियों को अंततः झुकना ही पड़ता है, चाहे वे कितनी ही शक्तिशाली क्यों न लगें। यही मक्का की दुष्ट शक्तियों के लिए स्पष्ट संदेश था।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पवित्र क़ुरआन इतिहास को केवल अतीत की घटनाओं का विवरण भर नहीं मानता, बल्कि उसे मानवता के लिए नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक मार्गदर्शन के रूप में प्रस्तुत करता है। वह ऐतिहासिक घटनाओं के माध्यम से इस संसार में कार्य कर रहे अपरिवर्तनीय ईश्वरीय नियमों को समझने का अवसर देता है। साथ ही वह शिक्षा देता है, बुराई से सावधान करता है और यह दिखाता है कि जो लोग ईश्वरीय नियमों का उल्लंघन करते हैं उनका अंत क्या होता है।

इसलिए क़ुरआन की दृष्टि में इतिहास पढ़ने के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

ईश्वरीय नियम की पहचान (Discernment of Divine Law) : क़ुरआन ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख इस उद्देश्य से करता है कि यह स्पष्ट हो सके कि इस संसार में अल्लाह का नियम किस प्रकार काम कर रहा है। हज़रत नूह, आद, समूद और क़ौमे-लूत की विस्तृत घटनाएं प्रस्तुत करके क़ुरआन यह दिखाता है कि सत्य और असत्य के बीच संघर्ष होता है, लेकिन अंततः ईश्वरीय नियम के अनुसार सत्य की ही विजय होती है और असत्य का विनाश हो जाता है। यह घटनाएं इस धरती पर अल्लाह की शक्ति के ठोस प्रमाण भी प्रस्तुत करती हैं। साथ ही क़ुरआन यह भी बताता है कि ईश्वरीय नियम अपरिवर्तनीय है–

"अल्लाह का यही नियम पहले भी रहा है और तुम अल्लाह के नियम में कोई परिवर्तन नहीं पाओगे।"

(क़ुरआन, 48:23)

उद्देश्यपरक चयनात्मक वर्णन (Selective Narration Focused on Purpose) : जैसा कि पहले कहा जा चुका है, क़ुरआन इतिहास को क्रमबद्ध (chronological) विवरण के रूप में प्रस्तुत नहीं करता। वह केवल उन घटनाओं का चयन करता है जिनका नैतिक और आध्यात्मिक महत्व हो। इसका उद्देश्य केवल शैक्षणिक जानकारी या मानसिक मनोरंजन के लिए कहानी सुनाना नहीं, बल्कि मार्गदर्शन देना है।

उदाहरण के लिए, हज़रत यूसुफ़ (अलैहिस्सलाम) की कहानी धैर्य, अल्लाह पर भरोसा, क्षमा और ईश्वरीय योजना पर विश्वास का पाठ सिखाती है। यह भी दिखाती है कि ईश्वरीय नियम किस प्रकार काम करता है—कैसे एक चरित्रवान व्यक्ति, जो भौतिक दृष्टि से अत्यंत कमज़ोर और उपेक्षित स्थिति में था, अंततः एक शक्तिशाली राज्य के उच्च पद तक पहुंच जाता है। उनकी कथा सुनाने के बाद क़ुरआन ध्यान दिलाता है–

"निश्चय ही उनकी कथाओं में समझ रखने वालों के लिए शिक्षा है।" (क़ुरआन, 12:111)

नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा का स्रोत (Source of Moral and Spiritual Lessons) : क़ुरआन बार-बार कहता है कि अतीत की घटनाओं में समझ रखने वालों के लिए शिक्षा है। पहले की क़ौमों—जैसे क़ौमे-लूत और क़ौमे-शुऐब—की घटनाएं इसलिए सुनाई गई हैं कि वर्तमान और आने वाली पीढ़ियां उनसे शिक्षा लें और अश्लीलता तथा भ्रष्टाचार से बचें। इतिहास के माध्यम से यह दिखाया गया है कि ईमान और न्याय का परिणाम अच्छा होता है, जबकि घमंड, अनैतिकता और भ्रष्टाचार का अंत बुरा होता है।

क़ौमों का उत्थान और पतन (Nations Rise and Fall) : पवित्र क़ुरआन हज़रत मूसा और फ़िरऔन की घटनाओं को विस्तार से बयान करके यह स्पष्ट करता है कि क़ौमों के उत्थान और पतन पर भी ईश्वरीय नियम लागू होता है। घमंड और अहंकार, सत्य और अल्लाह की निशानियों का लगातार इन्कार करना, धरती में फ़साद और अन्याय फैलाना तथा निर्दोष लोगों पर अत्याचार करना—ये सब ऐसे कारण हैं जिनमें ईश्वरीय नियम हस्तक्षेप करता है और अंततः किसी क़ौम के पतन का कारण बनता है।

पुनरुत्थान का ईश्वरीय नियम (The Divine Law of Revival): इस्लाम से पहले अरब समाज नैतिक दृष्टि से अत्यंत पतन की स्थिति में था और सामाजिक रूप से क़बीलाई परंपराओं के अधीन था, जहां "जिसकी लाठी उसकी भैंस" का सिद्धांत चलता था। किसी सच्चे मार्गदर्शक के अभाव में समाज का कमज़ोर वर्ग—ग़ुलाम और महिलाएं—भारी शोषण का शिकार थे। मूर्ति-पूजा व्यापक और प्रभावी थी तथा संपूर्ण समाज नैतिक जड़ता में डूबा हुआ था।

लेकिन इस्लाम के आगमन के बाद वही पतित समाज केवल 23 वर्षों के भीतर एक आदर्श समाज में बदल गया। प्रसिद्ध इतिहासकार पी. के. हित्ती के शब्दों में उस परिवर्तित समाज का सामूहिक चरित्र यह था–

"साहस, कठिनाइयों में धैर्य, पड़ोसियों के अधिकारों और कर्तव्यों का पालन, पुरुषार्थ, उदारता और आतिथ्य, महिलाओं के प्रति सम्मान और किए गए वचनों को निभाना।"

(History of Arabs)

क़ुरआन इस परिवर्तन को इन शब्दों में बयान करता है–

"और अल्लाह की उस नेमत को याद करो जो उसने तुम पर की, जब तुम एक-दूसरे के दुश्मन थे, फिर उसने तुम्हारे दिलों को जोड़ दिया और उसकी कृपा से तुम भाई-भाई बन गए। और तुम आग के गड्ढे के किनारे पर थे, तो उसने तुम्हें उससे बचा लिया। इस प्रकार अल्लाह अपनी निशानियां तुम्हारे सामने स्पष्ट करता है, ताकि तुम मार्ग पा सको।"

(क़ुरआन, 3:103)

इसके बाद केवल 13 वर्षों के भीतर वही अरब दुनिया के बड़े हिस्से पर शासन करने लगे। इस इतिहास को प्रस्तुत करके क़ुरआन पुनरुत्थान का नियम स्पष्ट करता है–

"तुम में से जो लोग ईमान लाए और अच्छे कर्म किए, उनसे अल्लाह ने वादा किया है कि वह उन्हें धरती में अवश्य सत्ता देगा, जैसे उसने उनसे पहले वालों को सत्ता दी थी…"

(क़ुरआन, 24:55)

क़ुरआन की ऐतिहासिक प्रस्तुति यह भी स्पष्ट करती है कि अल्लाह किसी क़ौम की हालत केवल चमत्कार से नहीं बदलता। वह यह नियम बताता है–

"निस्संदेह अल्लाह किसी क़ौम की हालत नहीं बदलता, जब तक कि वे स्वयं अपने भीतर की हालत को न बदल दें।" (क़ुरआन, 13:11)

उद्देश्यपूर्ण पुनरावृत्ति (Repetitions with a Purpose) : क़ुरआन का अध्ययन करते समय यह दिखाई देता है कि कई ऐतिहासिक घटनाएं बार-बार बयान की गई हैं। यह कोई निरर्थक पुनरावृत्ति नहीं है, बल्कि इतिहास से शिक्षा लेने के लिए बार-बार ध्यान दिलाने का तरीक़ा है। इसका उद्देश्य स्मरण, मार्गदर्शन और ज़ोर देना है।

क़ुरआन कहता है–

"अल्लाह ने सबसे उत्तम वाणी उतारी है—एक ऐसी पुस्तक जो अपने विषयों को विभिन्न रूपों में दोहराती है। उसे सुनकर उन लोगों की त्वचा कांप उठती है जो अपने प्रभु से डरते हैं, फिर उनकी त्वचा और उनके दिल अल्लाह की याद के लिए नरम पड़ जाते हैं…" (क़ुरआन, 39:23)

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि क़ुरआन इतिहास को केवल कहानी सुनाने के लिए प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि केवल मार्गदर्शन के उद्देश्य से प्रस्तुत करता है—ताकि समाज अतीत के ग़लत लोगों द्वारा की गई ग़लतियों को दोहराने से बचे और अल्लाह के दंड का शिकार न बने। ■■

हम्द

हमने तुझे जाना है फ़क़त तेरी अता से

हफ़ीज़ बनारसी

हमने तुझे जाना है फ़क़त तेरी अता से,
सूरज के उजाले से, फ़ज़ाओं से, ख़ला से।
चांद और सितारों की चमक, और ज़िया से,
जंगल की ख़मोशी से, पहाड़ों की अना से।
पुरहौल समुन्दर से, पुरअसरार घटा से,
बिजली के चमकने से, कड़कने की सदा से।
मिट्टी के ख़ज़ानों से, अनाजों से, ग़िज़ा से,
बरसात से, पानी से, तूफ़ान से, हवा से।

हमने तुझे जाना है फ़क़त तेरी अता से,
गुलशन की बहारों से, तो कलियों की हया से।
मासूम-सी रोती हुई शबनम की अदा से,
लहराती हुई बाद-ए-सहर, बाद-ए-सबा से।
हर रंग के, हर शान के फूलों की ख़बा से,
चिड़ियों के चहकने से, तो बुलबुल की नवा से।
मोती की नज़ाकत से, तो हीरे की ज़िरा से,
हमने तुझे जाना है फ़क़त तेरी अता से।

हमने तुझे जाना है फ़क़त तेरी अता से,
दुनिया के हवादिस से, जफ़ाओं से, वफ़ा से।
रंज-ओ-ग़म-ए-आलम से, दर्दों से, दवा से,
ख़ुशियों से, तबस्सुम से, मरीज़ों की शिफ़ा से।
बच्चों की शरारत से, तो मांओं की दुआ से,
नेकी से, इबादत से, लग़ज़िश से, ख़ता से।
ख़ुद अपने ही सीने के धड़कने की सदा से,
हमने तुझे जाना है फ़क़त तेरी अता से।

हमने तुझे जाना है फ़क़त तेरी अता से,
इब्लीस के फ़ितने से, तो आदम की ख़ता से।
औसाफ़-ए-इब्राहीम से, तो यूसुफ़ की हया से,
और हज़रत-ए-अय्यूब की तस्लीम-ओ-रज़ा से।
ईसा की मसीहाई से, मूसा के असा से,
नमरूद के, फ़िरऔन के अंजाम-ए-फ़ना से।
काबे के तक़द्दुस से, तो मरवा-ओ-सफ़ा से,
तौरात से, इंजील से, क़ुरआं की सदा से।
यासीन से, ताहा से, मुज़म्मिल से, नबा से,
एक नूर जो निकला था कभी ग़ार-ए-हिरा से।
हमने तुझे जाना है फ़क़त तेरी अता से...!!




A Well Wisher
J. I. H.
Jamshedpur
(Jharkhand)
हज़रत आइशा (रज़ि.) कहती हैं कि नबी (सल्ल.) रमज़ान के अन्तिम दस दिनों में एतिकाफ़ करते थे यहां तक कि अल्लाह ने आपको उठा लिया। फिर इसके बाद आपकी पत्नियां एतिकाफ़ करती रहीं।
(हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

लघुकथा

"बीज"

❖सुफ़ियान अहमद

आज सुबह से टीवी पर ख़बर चल रही थी—'दुनिया के सबसे ताक़तवर मुल्क ने एक देश के सर्वोच्च नेता की हत्या कर दी।'

लोग तरह-तरह की बातें कर रहे थे। एक बोला, 'चालाक होता तो बच जाता।' दूसरा बोला, 'जान बचाना ही सबसे बड़ी समझदारी है।'

पास बैठा बूढ़ा सब चुपचाप सुन रहा था। उसने धीरे से पूछा, 'तो क्या वह बच सकता था?'

'क्यों नहीं!' एक आदमी बोला, 'बस झुक जाता।'

बूढ़ा मुस्कुराया और बोला— 'तुम्हें लगता है वह मर गया?' सबने हैरानी से उसकी तरफ़ देखा।

बूढ़ा बोला, 'कभी-कभी समय आदमी को एक बहुत बड़ा मौक़ा देता है। उसके सामने दो रास्ते रख देता है। पहला रास्ता आसान होता है—झुक जाओ, समझौता कर लो, ताक़तवर के सामने सिर रख दो और लंबी उम्र पा लो। दूसरा रास्ता कठिन होता है—अपने उसूल पर अडिग रहो, चाहे इसकी क़ीमत जान ही क्यों न हो।'

'ज़्यादातर लोग पहला रास्ता चुनते हैं', एक आदमी बीच में ही बोल पड़ा।

बूढ़े ने सिर हिलाया, 'हां, क्योंकि ज़िंदगी प्यारी होती है, लेकिन इतिहास को हमेशा वही लोग याद रहते हैं जिन्होंने दूसरा रास्ता चुना।

जो आदमी अपने उसूल के लिए मरता है, वह मिट्टी में जाने के बाद ... बीज बनकर आने वाली नस्लों में उगता है।

क्योंकि,

मौत तो उसकी है करे याद ज़माना जिसको,

यूं तो दुनिया में सभी आते हैं मरने के लिए। ■■

“जो लोग अपने माल को रात-दिन छिपे और खुले ख़र्च करते हैं, उनके लिए अपना प्रतिदान उनके ‘रब’ के पास है, और न उन्हें कोई भय है और न वे शोकाकुल होंगे।
(क़ुरआन, 2:274)”

A Well Wisher

J. I. H.

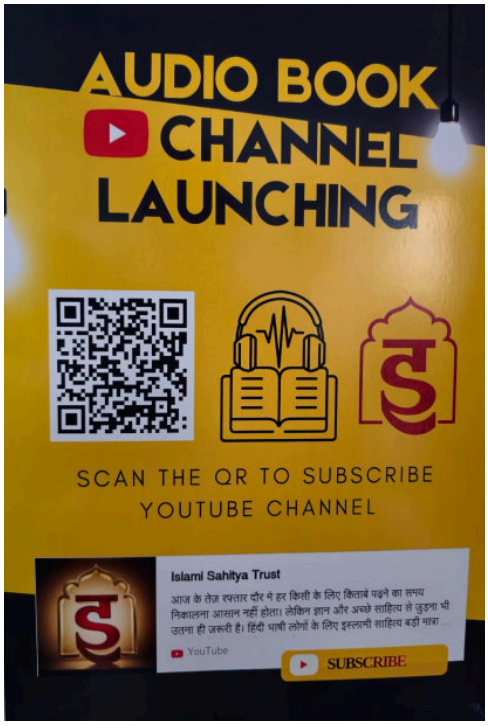
Lambadiya, Gujrat

हिन्दी पुस्तकों का ऑडियो चैनल



इस्लामी साहित्य ट्रस्ट, नई दिल्ली की ओर से गत दिनों हिन्दी पुस्तकों के ऑडियो चैनल का उद्घाटन जमाअत-ए-इस्लामी हिन्द के अध्यक्ष जनाब सैयद सआदतउल्लाह हुसैनी के हाथों हुआ।

ट्रस्ट के सचिव जनाब वारिस हुसैन ने अपने वक्तव्य में बताया कि मौलाना मौदूदी की पुस्तक 'बनाव-बिगाड़' की ऑडियो युटुब पर अपलोड कर दी गई है। जल्द ही 'सलामती का रास्ता' और 'रिसाला-ए-दीनियात' की ऑडियो भी अपलोड कर दी जाएगी। आगे पचास-साठ पुस्तकें और अपलोड करने का इरादा है।



विदित रहे कि बीते माह इस्लामी साहित्य ट्रस्ट ने सर्च सुविधा के साथ 'तफ़हीमुल क़ुरआन' ऐप लांच किया था। इसके नए संस्करण में सब्जेक्ट इंडेक्स (Subject Index) को शामिल किया गया है, जिसके माध्यम से उपयोगकर्ता तफ़हीमुल क़ुरआन में मौजूद विभिन्न विषयों को आसानी से खोजकर उनसे संबंधित जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

उक्त ऑडियो चैनल के उद्घाटन के अवसर पर जमाअत के उपाध्यक्ष, जनाब इंजीनियर मुहम्मद सलीम और जनाब मलिक मोतसिम ख़ाँ, सचिव-जनाब मुहम्मद अहमद, डॉक्टर मुहिय्युद्दीन ग़ाज़ी, डॉक्टर मुहम्मद रज़ीउल इस्लाम नदवी, सहायक सचिव- डॉक्टर रिज़वान अहमद रफ़ीक़ी, जनाब इनामुर्रहमान ख़ाँ, ट्रस्ट के एकेडमिक डायरेक्टर, मौलाना नसीम अहमद ग़ाज़ी तथा प्रबंधक जावेद अहमद मौजूद थे।

आर्थिक मुश्किलों का आदर्श हल

❖सलमान अहमद

ज़कात इस्लाम के मुख्य स्तंभों में से एक है। इसके द्वारा समाज कल्याण और आत्मा की शुद्धि के ठोस प्रबंध किये गए हैं। आम तौर पर इसे योग्य बचत और धन के 2.5 फ़ीसद के तौर पर अनुमानित किया जाता है। इसका मक़सद किसी की आय को शुद्ध करना है, साथ ही ग़रीबों, कमज़ोर लोगों और कर्ज़ में डूबे लोगों सहित ज़रूरतमंद लोगों की मदद करना है। क़ुरआन की शिक्षाओं और पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल.) के मार्गदर्शन पर आधारित ज़कात न केवल इबादत का हिस्सा है, बल्कि समाज में न्याय, दया और आर्थिक संतुलन को बढ़ावा देने के लिए बनाया गया सामाजिक कल्याण का एक शक्तिशाली तरीक़ा भी है। अगर ज़कात की व्यवस्था को ठीक से लागू किया जाए, पारदर्शी तरीक़े से प्रबंध किया जाए, और बड़े पैमाने पर लोगों को इसके बारे में बताया जाए, तो इसके ज़रिए न केवल अनगिनत लोगों को ग़रीबी से बाहर निकाला जा सकता है, बल्कि इसमें इस्लाम के बारे में लोगों की समझ को भी नया रूप देने की क्षमता है।



आज दुनिया विकास और संकटों के एक नाज़ुक मोड़ पर खड़ी है। दशकों की आर्थिक तरक़्क़ी के बावजूद असीम ग़रीबी ख़त्म नहीं हुई है। वर्ल्ड बैंक के अनुसार, लगभग 700 मिलियन लोग जो दुनिया की आबादी का लगभग 8-9 फ़ीसद हैं अभी भी अत्यंत ग़रीबी में जी रहे हैं। वे रोज़ाना $2.15 से भी कम में गुज़ारा कर रहे हैं। साथ ही, असमानता बढ़ती जा रही है। ऑक्सफैम की 2024–25 की असमानता रिपोर्ट के अनुसार, हाल के वर्षों में बनी नई ग्लोबल दौलत में सबसे अमीर 1 फ़ीसद लोगों ने बहुत ज़्यादा हिस्सा हासिल कर लिया है। इससे पता चलता है कि ऊंचे लोगों के धन संग्रह बहुत ज़्यादा है। जबकि अरबों लोग अपनी बेसिक ज़रूरतें पूरी करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। यह असंतुलन एक ऐसी दुनिया को प्रतिबिंबित करता है जहां आर्थिक विकास साझा समृद्धि में नहीं बदली है। इस असमानता के सबसे भयावह वाले नतीजों में से एक भूख है। फ़ूड एंड एग्रीकल्चर ऑर्गनाइज़ेशन (FAO) की हालिया 'स्टेट ऑफ़ फ़ूड सिक्योरिटी एंड न्यूट्रिशन इन द वर्ल्ड' रिपोर्ट के मुताबिक, दुनिया भर में करोड़ों लोग लंबे समय से भूख का सामना कर रहे हैं, और 2 अरब से ज़्यादा लोग स्वस्थ आहार का ख़र्च नहीं उठा सकते। कुपोषण, खाने की कमी, और रहने का बढ़ता ख़र्च, कमज़ोर परिवारों को क़र्ज़ और निराशा में और ज़्यादा धकेल रहे हैं। विवाद, जलवायु परिवर्तन और आर्थिक अस्थिरता ने मुश्किलें और बढ़ा दी हैं, ख़ासकर कमज़ोर और लड़ाई से प्रभावित इलाक़ों में, जहाँ ग़रीबी की दर अभी भी बहुत ज़्यादा है। भारत की तस्वीर जटिल है। एक ओर, NITI आयोग के अनुमान के मुताबिक़ पिछले दस वर्षों में बहुआयामी ग़रीबी में काफ़ी कमी आई है, जिससे लाखों लोग बहुत ज़्यादा कमी से बाहर निकले हैं। हालाँकि, कमज़ोरी अभी भी बड़े पैमाने पर है। वर्ल्ड बैंक और अलग-अलग नेशनल सर्वे के डेटा के मुताबिक, आबादी का एक बड़ा हिस्सा अभी भी मामूली रोज़ाना की आमदनी पर गुज़ारा कर रहा है, जिसमें कई परिवार ग़रीबी रेखा से थोड़ा ऊपर रह रहे हैं और बीमारी, बेरोज़गारी या महंगाई की वजह से उनके ग़रीबी रेखा से नीचे जाने का ख़तरा बना हुआ है। शहरी और ग्रामीण इलाक़ों और सामाजिक समूहों के बीच आय में असमानता तथा अवसर तक असमान पहुंच को लगातार बनाए हुए है।

इन आंकड़ों से परे, इंसानी संघर्ष और भी गहरे हैं - निरक्षरता, अच्छी शिक्षा तक सीमित पहुंच, हेल्थकेयर का बढ़ता ख़र्च, कर्ज़, बेरोज़गारी और सामाजिक अन्याय। यूनाइटेड नेशंस डेवलपमेंट प्रोग्राम (UNDP) की रिपोर्ट के अनुसार स्वास्थ्य, शिक्षा और आय से सम्बंधित असमानता वैश्विक और साउथ एशिया स्तर पर मानव विकास में सबसे बड़ी बाधा बानी हुई है। आर्थिक तंगी सिर्फ़ आय की कमी नहीं है; यह सम्मान खोने, कम विकल्प और सीमित भविष्य के बारे में है। दुनिया के सामने—और भारत के सामने—चुनौती सिर्फ़ आंकड़ों के हिसाब से ग़रीबी कम करने की नहीं है बल्कि अधिक उत्तम व्यवस्था बनाने की है जहाँ पैसा बराबर बंटे, भूख ख़त्म हो और हर कोई सुरक्षा, अवसर और सम्मान के साथ जी सके। ■■

कहानी

विस्थापित शिक्षिका की मनोकामना

❖इकराम तलअत अहमद

“मुझे ख़बरों से पता चला कि इसराईली सेनाओं ने इब्ने ख़लदून मॉडल स्कूल को नष्ट कर दिया, जहां मैं काम करती थी। ग़ज़्ज़ा पट्टी पर इस दमनकारी युद्ध के दौरान मैंने अपनी दोनों नौकरियां खो दीं। नूर सेंटर में मेरे साथ काम करने वाले चार शिक्षक मारे गए। लेकिन मैंने काम के प्रति अपना प्यार और बच्चों को पढ़ाने के प्रति अपना प्यार नहीं खोया है।”



युद्ध से पहले, मैं ग़ज़्ज़ा पट्टी में एक किंडरगार्टन में अंग्रेज़ी भाषा की शिक्षिका के रूप में काम करती थी। शाम को मैं अपने घर के नीचे अपने ख़ुद के शैक्षणिक केंद्र में छात्रों को निजी ट्यूशन पढ़ाती थी। मैं यूनिवर्सिटी में पढ़ाई के समय से ही मैं काम कर रही थी, लेकिन इस युद्ध के दौरान मैंने अपनी नौकरी खो दी। मेरे घर और शैक्षणिक केंद्र पर बमबारी करके उसे नष्ट कर दिया गया, और जिस स्कूल में मैं काम करती थी, वह भी तबाह कर दिया गया। इस युद्ध में मैंने सब कुछ खो दिया, मगर मेरा हौसला बाक़ी है। मैं अपने विस्थापित परिवार के तम्बू को विस्थापित बच्चों को पढ़ाने के लिए एक छोटे स्कूल में बदलने में कामयाब हो गई हूं। मेरा नाम इकराम तलात अहमद है। मैं 29 साल की हूं। यह ग़ज़्ज़ा पट्टी पर इसराईल के अवैध क़ब्ज़े के युद्ध के दौरान हुए हमारे भारी नुक़सान की कहानी है, और शिक्षा के माध्यम से क़ब्ज़ाकारियों को जवाब देने की मेरी कहानी है।

मैं अपने परिवार के साथ ग़ज़्ज़ा पट्टी के मध्य में बुरेज शरणार्थी शिविर में रहती हूं। कई साल पहले मैंने अंग्रेज़ी भाषा में स्नातक की डिग्री प्राप्त की थी। मैं अपने पति रामी अल-बतरान और छह साल की बेटी—सेलीन और चार साल के बेटे—इबराहीम के साथ एक ख़ुशहाल और शांत जीवन जी रही थी। मुझे इब्ने खलदून मॉडल स्कूल में नौकरी मिल गई और मैंने अपने घर में अपना ख़ुद का शैक्षणिक केंद्र भी खोल लिया। मुझे पढ़ाना बहुत पसंद था; यह धरती पर सबसे नेक पेशा है। मैं अपना अधिकांश समय बच्चों को पढ़ाने में बिताती थी, सब कुछ बहुत मज़े में चल रहा था। फिर अचानक युद्ध छिड़ गया और सब कुछ तहस-नहस होकर रह गया। पिछले लगभग आठ कठिन महीनों में मैंने सब कुछ खो दिया।

मैं इब्ने ख़लदून मॉडल स्कूल के किंडरगार्टन में बच्चों को अंग्रेज़ी भाषा पढ़ाती थी। मुझे इस काम से बहुत ख़ूशी मिलती थी। मुझे बच्चे और पढ़ाई का पेशा दोनों से बहुत प्यार है। मेरे जीवन की सबसे बड़ी ख़ूशी बच्चों को पढ़ाना और उनको शिक्षा देना रही है। कई सालों की शिक्षण सेवा के बाद, मैं बुरेज शरणार्थी शिविर में अपने घर के नीचे अपना ख़ुद का शैक्षणिक केंद्र खोलने में कामयाब हो गई और मैंने इसे “नूर एजुकेशनल सेंटर” नाम दिया। मैं किंडरगार्टन से लेकर प्रिपरेटरी स्टेज तक के छात्रों को निजी ट्यूशन पढ़ाने में कई-कई घंटे बिता देती थी। मुझे अपने निजी काम की सफलता और अपने शैक्षणिक प्रोजेक्ट को विकसित करने की क्षमता से ख़ूशी मिलती थी।

एक अपील, एक ऐलान और तआरुफ़

आपकी ख़ुसूसी तवज्जह का सब से ज़्यादा मुस्तहिक़

40 साल की ख़िदमात

मुस्लिम लड़कियों का यतीमख़ाना गया



कैफ़ियते-क़ियाम : इदारा का तीन यतीम लड़कियों से 21 दिसम्बर 1986 को एक किराया के खपरैल मकान में क़ियाम अमल में आया था, जो कभी साँप, बिच्छू और चिड़ियों का बसेरा था—बक़ौल अल्लामा इक़बाल (रह.) "इश्क़ ने आबाद कर डाले हैं दश्त-ओ-कोहसार"

हिन्दुस्तान की रियासत बिहार, झारखंड, बंगाल, उड़ीसा (ओडीशा) में अपने तर्ज़ की पहली और वाहिद इक़ामती दीनी व असरी उलूम की मशहूर तालीमगाहें (Residential) जो इस्लामी और असरी उलूम का संगम होने की वजह से मशहूर है। • इदारा बुनियाद के दिन से ही सही इस्लामी ख़ुतूत पर यतीम के साथ-साथ ग़रीब और ग़ैर-यतीम तालिबात की तालीमी व तर्बियती ख़िदमात अंजाम दे रहा है। • यहां की तालिबात को मैट्रिक (Matric) पास करने के बाद कॉलेज के अलावा अरबी यूनिवर्सिटी में पहले और दूसरे साल में बाआसानी दाख़िला मिल जाता है। • शोबा-ए-हिफ़्ज़ की तालिबा को भी हिफ़्ज़ के साथ-साथ मैट्रिक (Matric) तक पढ़ाया जाता है। • पांच ज़ुबानों में क़ुरआन और इस्लामियात और बिहार बोर्ड के निसाबे-तालीम के साथ मेयारी तालीम का नज़्म है। • **तालीमी साल** अप्रैल ता मार्च, • इदारा के अहाता (Campus) में ही पर्दे (Purdah) में रहकर नर्सरी (Nursery) से मैट्रिक (Matric) तक की तालीम, होम साइंस, उमोरे-ख़ानादारी, सिलाई-कटाई, मेहंदी व पेंटिंग और कम्प्यूटर की तालीम वग़ैरा दी जाती है। इसके लिए बच्चियों को कहीं आना-जाना नहीं पड़ता। • **तालीमी मराहिल** • इब्तिदाई • सानवी • आला • फ़ासलाती तालीम • शोबा हिफ़्ज़ व नाज़रा **यतीम तालिबात की तादाद** 75 है। **नोट** यतीम तालिबात का सारा ख़र्च, तआम व क़ियाम व रिहाइश वग़ैरा बिल्कुल मुफ़्त (Free) है किसी तरह का कोई ख़र्च नहीं लिया जाता है। **बैरूनी तालिबात की तादाद** अपने ख़र्च पर दारुल अक़ामा (Boarding) में रहकर तालीम हासिल करने वाली और दूसरे गांव से पढ़कर जाने वाली लगभग 100 हैं। **किफ़ाला स्कीम (Sponsorship)** के तहत एक यतीम बच्ची का सालाना ख़र्च तीस हज़ार रुपये (Rs. 30,000) है। आप भी एक यतीम बच्ची की किफ़ालत की ज़िम्मेदारी लेकर सवाब में शरीक हों। **असातिज़ा, मुअल्लिमात और दीगर मुलाज़िमीन की तादाद** 33 है। एक माह की तनख़्वाह एक लाख अस्सी हज़ार रुपये (Rs. 1,80,000) से ज़्यादा है। **सालाना ख़र्च** तक़रीबन पैंतालिस लाख रुपये (Rs. 45,00,000)। **ज़रिया आमदनी** मुस्लिम अवाम के चंदे **अपील** आज के माद्दापरस्ताना (Materialistic) और जदीद दौर में लड़कियों के लिए जदीद और मुकम्मल इस्लामी तर्ज़े-तालीम के साथ रिहाइशी (Residential) इदारों की पहले से कहीं ज़्यादा बढ़कर ज़रूरत है। • आप इस आसमान छूती महंगाई को देखते हुए और माहे रमज़ानुल मुबारक वग़ैरह के मुबारक मौक़ा पर इदारे की नन्ही-मुन्नी मासूम यतीम बच्चियों को ऊंचा उठाने के लिए अपने • ज़कात • अतियात • सदक़ात से भरपूर माली मदद करें ताकि वे तालीम और हुनर के मैदान में आगे बढ़ सकें और किसी से पीछे न रहें। • बाक़ी तामीरी व तालीमी मन्सूबों को पूरा करने के लिए रक़म की फ़ौरी ज़रूरत है। • इदारा आपके फ़राख़दिलाना और मुख़लिसाना भरपूर माली तआवुन का मुंतज़िर है। **याद रखें** यह लड़कियों का इदारा है। यहां चंदा वसूल करने वालों की बहुत कमी है। यहां का कोई भी मुहस्सिल कमीशन (उजरत) पर चंदा वसूल नहीं किया करता है।

नोट : इदारा की मुख़्तसर तारीख़ दस्तावेज़ी फ़िल्म (Documentary Film) नज़रे-इनायत (Nazr-e-Enayeth) यू-ट्यूब (You Tube) पर देखें।

चैक व ड्राफ़्ट और कोर बैंकिंग स्लिप पर सिर्फ़ यह लिखें : THE GAYA MUSLIM GIRLS' ORPHANAGAE

बराए राबिता चैक व ड्राफ़्ट और मनीऑर्डर भेजने का पता

Founder & Hon. G. Secretary, THE GAYA MUSLIM GIRLS' ORPHANAGE,
At. : Kolowna, P.o : Cherki-824237, Distt. : Gaya (Bihar) India

Email : thegayamuslimgirlsorphanage@gmail.com, Mobile : 8969435151, Website : www.gmgo.in

Beneficiary Name
THE GAYA MUSLIM GIRLS' ORPHANAGE
Bank A/C No.: 300402010007752 (ज़कात/Zakath)
Bank A/C No.: 300402010009846 (डोनेशन/Donation)
Bank IFSC Code No: UBIN0530042
Bank: UNION BANK OF INDIA
(MAIN BRANCH GAYA)

Scan & Pay

याद रखें : बैंक में रक़म ट्रांसफ़र की तफ़्सील बराए-मेहरबानी स्कैन एंड पै (Scan & Pay) या किसी ज़रिये से रक़म ट्रांसफ़र के बाद स्क्रीन शॉट (Screen Shot) नाम व पता सहित व्हाट्स एप कर दें ताकि रसीद भेजी जा सके।

व्हाट्स एप नम्बर 7367909126 बानी व इजाज़ी जनरल सेक्रेट्री इक़बाल अहमद ख़ां—9934480190
पटना ब्रांच ऑफ़िस : पटना शहर के हमदर्द अपना चैक व ड्राफ़्ट और रक़म देने के लिए इनसे राबिता करें।
जनाब ग़ुलाम मुहम्मद ख़ां (सदर) समनपूरा, पटना, **मोबाइल : 9934943229**
जनाब इंजीनियर मुहम्मद हसनैन ख़ां, समनपूरा, पटना, **मोबाइल : 9631867066**

इसराईली सेनाओं द्वारा ग़ज़्ज़ा पट्टी के मध्य गवर्नरेट के शिविरों पर आक्रमण करने के बाद, मेरा परिवार और मैं दैर अल-बलाह शहर की ओर भाग निकले, जहां हमने विस्थापन शिविरों में एक तम्बू गाड़ा। हम जनवरी 2024 से वहां रह रहे हैं। इसराईली सेनाओं ने बुरेज शिविर पर लगभग एक महीने तक क़ब्ज़ा किये रखा था, और उनके जाने के बाद मेरे पति हमारे घर की जांच करने गए, तो पता चला कि वह पूरी तरह से नष्ट हो चुका था, साथ ही मेरा शैक्षणिक केंद्र भी।

मुझे ख़बरों से पता चला कि इसराईली सेनाओं ने इब्ने ख़लदून मॉडल स्कूल को नष्ट कर दिया, जहां मैं काम करती थी। ग़ज़्ज़ा पट्टी पर इस दमनकारी युद्ध के दौरान मैंने अपनी दोनों नौकरियां खो दीं। नूर सेंटर में मेरे साथ काम करने वाले चार शिक्षक मारे गए। लेकिन मैंने काम के प्रति अपना प्यार और बच्चों को पढ़ाने के प्रति अपना प्यार नहीं खोया है।

दैर अल-बलाह में विस्थापन तम्बुओं में लगभग एक महीना बिताने और यह जानने के बाद कि क़ब्ज़ा करने वाली सेना ने मेरे घर और शैक्षणिक केंद्र को नष्ट कर दिया है, मैंने फिर से पढ़ाना शुरू करने का फ़ैसला किया। मैंने और मेरे पति ने आपसी सहमति से फ़ैसला किया कि जिस तम्बू में हम रहते हैं, उसे छोटे बच्चों को पढ़ाने के लिए एक छोटे स्कूल में बदल दिया जाए। आश्रय शिविर में विस्थापित छात्रों की संख्या बहुत अधिक है, और वे सारे छात्र अपना समय बिना किसी काम के बिताने पर विवश हैं, क्योंकि युद्ध की शुरुआत से ग़ज़्ज़ा पट्टी में सामान्य जीवन सभी पहलुओं से पूरी तरह से ठप हो चुका है। मेरी शैक्षणिक पहल की शुरुआत मेरे तम्बू के पास रहने वाले बच्चों को पढ़ाने से हुई। इस विचार को शिविर के सभी निवासियों ने दिल से स्वीकार किया, सराहा और प्रोत्साहित किया। मैं पहली कक्षा से छठी कक्षा तक के बच्चों को पढ़ाती हूं। छात्रों की संख्या 200 से अधिक हो चुकी है, और उनके बढ़ने का क्रम लगातार जारी है। हर दिन कुछ न कुछ नए छात्र आते ही जा रहे हैं।

तम्बू एजुकेशनल सेंटर की मेरी पहल का विस्तार भी हो रहा है। तम्बू में मेरे साथ स्वयंसेवी के रूप में काम करने के लिए एक-एक कर चार शिक्षिकाएं आ चुकी हैं। वे हैं अंग्रेज़ी भाषा की शिक्षिका इमान बसाल; अरबी भाषा की शिक्षिका हनीन अल-ज़रेई; प्रिपरेटरी स्टेज की शिक्षिका दीना अल-ज़रेई और शैक्षणिक तम्बू में पाठों के समन्वय की निगरानी करने वाली शिक्षिका। मैंने इस शैक्षणिक तम्बू का नाम 'नूर एजुकेशनल सेंटर' रखा क्योंकि मैं चाहती हूं कि क़ब्ज़ा करने वाली सेना द्वारा नष्ट किया गया एजुकेशनल सेंटर उसी नाम से जारी रहे, और मैं चाहती हूं कि हमारे बच्चे प्रकाश देखें और उनका भविष्य उज्ज्वल हो। फ़िलिस्तीनी इस कठोर युद्ध में शिक्षा के प्रति अपनी समर्पण भावना बनाए रखते हैं। हम ग़ज़्ज़ा पट्टी पर पिछले लगभग आठ महीनों से जारी तीव्र और निरंतर इसराईली बमबारी के बावजूद अपने बच्चों के दिलों और दिमाग़ों में पढ़ाई और शिक्षा की भावना को जीवित रखने की कोशिश कर रहे हैं।

तम्बू में बच्चों को पढ़ाने में हमें कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। सबसे बड़ी चुनौती तम्बू की संकरी जगह है, जो केवल तीन मीटर चौड़ी और सात मीटर लम्बी है, जो 200 से अधिक छात्रों को समायोजित करने के लिए किसी तरह पर्याप्त नहीं है, फिर भी बच्चे पढ़ाई के लिए हर दिन कई घंटे इसके अन्दर बिताते हैं। हमें दैनिक पाठों के दौरान भी कठिनाई का सामना करना पड़ता है, क्योंकि उच्च तापमान, गंदगी, कीड़े-मकोड़े और ज़रूरी सामान जैसे पेन, नोटबुक और व्हाइटबोर्ड की कमी आदि। कुर्सियों और डेस्क की कमी के कारण कुछ छात्र रेत पर बैठते हैं।

इन सबके बावजूद छात्रों के सीखने के प्रति उत्साह में कोई कमी नहीं है। हमने सबसे पहले उस विस्थापन शिविर के बच्चों को पढ़ाना शुरू किया जहां हम रहते हैं, और फिर पड़ोसी विस्थापन शिविरों के बच्चे भी आने लगे। ग़ज़्ज़ा पट्टी में लोग शिक्षा से बहुत प्यार करते हैं, और सभी माता-पिता अपने बच्चों की शिक्षा को लेकर बहुत जागरूक रहते हैं। ग़ज़्ज़ा पट्टी को दुनिया के सबसे शिक्षित क्षेत्रों में से एक माना जाता है।

हमने महसूस किया कि इसराईली युद्ध से पहले की तुलना में छात्रों की समझने की क्षमता में काफ़ी गिरावट आई है। पहले कुछ महीनों में हमें छात्रों की शैक्षणिक नींव स्थापित करने में कठिनाई हुई, जैसे सरल शब्द पढ़ना और अक्षरों का उच्चारण करना। समय के साथ छात्रों में काफ़ी सुधार हुआ है। हालांकि, युद्ध की कठिन परिस्थितियां और जिस पर्यावरण में हम रहते हैं, वह छात्रों की मानसिक क्षमताओं को प्रभावित करता है। यह हमारे काम में सबसे बड़ी बाधा है।

मैं सपना देखती हूं कि युद्ध जल्द समाप्त हो जाए और हम इस युद्ध की शुरुआत से पहले अपनी सामान्य ज़िन्दगी में लौट जाएं। मुझे उम्मीद है कि मैं अपने शौक़ जैसे किताबें

पढ़ना फिर से शुरू कर सकूं। मैं कामना करती हूं कि हमारे ख़िलाफ़ इसराईली नरसंहार बंद हो जाएं, और छात्र अपने स्कूलों में लौट जाएं। युद्ध के कारण ग़ज़्ज़ा के सभी छात्रों ने अपने जीवन से एक पूरा शैक्षणिक वर्ष खो दिया है। हमें अब वार्षिक परीक्षाओं की तैयारी करनी चाहिए थी, लेकिन स्कूल वर्ष की शुरुआत में ही युद्ध शुरू हो गया। अब हम शैक्षणिक वर्ष के अंत के क़रीब पहुंच रहे हैं, फिर भी ग़ज़्ज़ा पर इसराईली युद्ध जारी है। मेरा बड़ा सपना है कि मेरा नूर एजुकेशनल सेंटर फिर से बनाया जाए, इब्ने ख़लदून स्कूल जहां मैं कई सालों तक काम कर चुकी हूं, वह फिर से बनाया जाए, और सभी स्कूल फिर से खोले जाएं। मुझे उम्मीद है कि फ़िलिस्तीनी शिक्षा मंत्रालय छात्रों को इस शैक्षणिक वर्ष की भरपाई का कोई तरीक़ा ढूंढ़ेगा, और हम उनके शैक्षणिक वर्ष को पूरी तरह खोने से बचाने का कोई रास्ता निकाल लेंगे। लेकिन इसके लिए युद्ध का तुरंत समाप्त होना ज़रूरी है। ग़ज़्ज़ा पट्टी भर में डेढ़ मिलियन से अधिक विस्थापित लोगों के लिए वैकल्पिक आश्रय केंद्र ढूंढ़ना होगा, जो वर्तमान में स्कूलों में भीड़ लगाए हुए हैं।

मैंने अपने फ़िलिस्तीनी लोगों के प्रति अपना कर्तव्य निभाया है। मैं एक शिक्षिका हूं, और बच्चों को शिक्षित करना तथा एक शिक्षित, सांस्कृतिक पीढ़ी का उदय सुनिश्चित करना मेरा कर्तव्य है, जो हमारे देश को ऊंचा उठाने में सक्षम हो। मैंने युद्ध के दौरान साहस के साथ अपना काम जारी रखा, और मैंने यह सुनिश्चित किया कि ग़ज़्ज़ा वैसा ही बना रहे जैसा सभी जानते हैं—ज्ञान और विद्वानों का केंद्र। क़ब्ज़ा करने वाली सेना ने अपने युद्ध के दौरान दर्जनों स्कूलों और विश्वविद्यालयों को नष्ट कर दिया, और बचे हुए सभी स्कूलों को आश्रय केंद्रों में बदल दिया गया है। युद्ध समाप्त होने के बाद स्कूलों को फिर से पढ़ाई के काम के योग्य बनाने के लिए बड़े पैमाने पर तैयारी की ज़रूरत होगी। हमारे छात्रों को भी युद्ध के गंभीर और ख़तरनाक प्रभावों से उबरने के लिए व्यापक मनोवैज्ञानिक पुनर्वास की आवश्यकता है। हमें शैक्षणिक वर्ष को बचाने के लिए सभी के सहयोग और सभी ऊर्जाओं तथा क्षमताओं के एकजुट इस्तेमाल की ज़रूरत है। मुझे उम्मीद है कि तम्बू एजुकेशन सेन्टर की मेरी पहल को समर्थन मिलेगा और उसे स्टेशनरी तथा बुनियादी स्कूली सामग्री उपलब्ध कराई जाएगी।

मेरा सपना है कि युद्ध जल्द समाप्त हो जाए, और हम अपने बच्चों को स्कूलों और शैक्षणिक केंद्रों में पढ़ाना फिर से शुरू करें, जो उनके लिए उपयुक्त हों, और युद्ध से पहले के उस परिचित शैक्षणिक वातावरण के साथ डिज़ाइन किए गए हों जिसके हमारे छात्र आदी हैं। शिक्षक ज्ञान और शिक्षा के दूत हैं। हम अपने चारों ओर मौजूद सभी बड़े ख़तरों के बावजूद अपनी शैक्षणिक मिशन को जारी रखते हैं, इस विश्वास के साथ कि युद्ध समाप्त हो जाएगा और ग़ज़्ज़ा पट्टी में शैक्षणिक सफलता जारी रहेगी। ■■

नज़्म

मुहब्बत ज़माने में फैलाइएगा
ये सबकी ज़रूरत है समझाइएगा
हो अपनों की ख़ातिर या ग़ैरों की ख़ातिर
मुहब्बत ज़रूरी है रिश्तों की ख़ातिर
मुहब्बत से ख़ाली न हो आपका दिल
मुहब्बत भरा हो हरेक बाप का दिल
अगर मां के सीने में ममता न होगी
उसे अपने बच्चों की चिंता न होगी
न रखेगी वो पेट में नौ महीने
लहू अपना उनको न देगी वो पीने
ये सच्चाई दुनिया को बतलाइयेगा
मुहब्बत का जज़्बा है अनमोल नेमत
मुहब्बत से है ज़िन्दगी ख़ूबसूरत
है काइम ये दुनिया मुहब्बत की दम से
मुहब्बत मिलाती है हमको सनम से
मुहब्बत से ख़ाली इबादत नहीं है
अहिंसा दया दीन रहमत नहीं है
ज़माने में दैरो हरम भी न होते
मुहब्बत न होती तो हम भी न होते
ये कहने में हरगिज़ न शर्माइएगा
सभी को समझिये सदा ख़ानदानी
हर इक शख़्स पर कीजिए मेहरबानी
सगा हो या सौतेला रिश्ते में भाई
किसी से न कीजे कभी बेवफ़ाई
अगर अपने दुश्मन भी मिलने को आयें
मुहब्बत से उनको गले से लगायें
मुहब्बत मिटा देगी दूरी दिलों की
ज़रूरत नहीं बीच में फ़ासलों की
ये दूरी मिटाकर क़रीब आइयेगा।

–ज़हीर ललितपुरी

(An ISO 22000:2005 Certified Company)

OCEANS SECRET

INDIA'S LEADING CANNED FOOD BRAND

- TUNA
- SARDINES
- MACKEREL



www.oceanssecret.in | info@seahath.com | Follow Us: oceanssecret | SHOP ONLINE @ amazon

SEAHATH CANNING CO. Plot - 8, Margao Industrial Estate, Curtorim, GOA, INDIA - 403 709 **CUSTOMER CARE : 0832-2860412**

KANTI Monthly, New Delhi
April 2026
Posted on 20-21 March 2026
Published on 18 March 2026
Posted Delhi RMS Delhi-110006

RNI 53372/91
DL(S)-05/3147/2024-2026
LICENSED TO POST WITHOUT PREPAYMENT
License No. U(SE)-73/2024-26
Total Pages with Cover: 52



AAF



Res. (0832) 2732406
Mob.: 9422058677
9422439911
9225904060
9225903421

K. ABOOBAKER

Fish Merchants & Commission Agent

Wholesale Fish Market, Margao, Goa-403601